चम्पक सेठ



लेखक :—

पण्डित काशीनाथ जैन।

आदिनाथ हिन्दी-जैन-साहित्य-माला•••पुष्प नं० ४९

चम्पक सेठ

लेखक :—

परिडत काशीनाथ जैन

प्रकाशक :—

परिडत काशीनाथ जैन।

अध्यक्ष :—आदिनाथ हिन्दी-जैन-साहित्य-माला

७, खेलात घोप लेन, कलकत्ता-६

मु० वंबोरा, पो० कुरावड, (उदयपुर-मेवाड़)

[मूल्य ।।।) बारह आने]

आदिनाथ हिन्दी जैन-साहित्य-माला के माननीय

संरक्षक और आजीवन-सभासदों की

नामावली

संरक्षक :—

जीयागंज-बालुचर (मुर्शिदाबाद) निवासी लक्ष्मीपतसिंहजी छत्रपतसिंहजीके पुत्र परम श्रद्धेय धर्मोद्धारक ओसवाल कुल-दीपक स्वनामधन्य श्रावक-गुण-सम्पन्न दानवीर श्रीमान् माननीय बाबू श्री

श्रीपतसिंहजी दूगड़ ।

आजीवन सभासद

श्रीयुत् बाबू लक्ष्मीचन्द्रजी धन्नालालजी करनावट, कलकत्ता ।

,, ,, छन्नालालजी रिखबदासजी करनावट, कलकत्ता ।

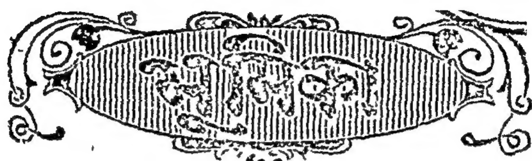
,, ,, हजारीमलजी शिखरचन्द्रजी रामपुरिया, बीकानेर ।

,, ,, हजारीमलजी नथमलजी रामपुरिया, बीकानेर ।

,, ,, रायसाहब मन्नालालजी दयाचंदजीपारख, कलकत्ता

Printed by—S. K. Manna.
Bholanath Printing Works—13, Rajendra Sen Lane, Calcutta.





अन्तिम-तीर्थङ्कर श्रीभगवान् महावीरने भव्य जीवोंके उपकारके निमित्त, अनेक प्रकारके दुःखरूपी तरङ्गोंसे भरे हुए संसार—समुद्रके पार पहुंचनेके लिये साधन-स्वरूप चार प्रकारके धर्मका, बारह परिषदों के सामने, सुवर्ण, रत्न और चाँदीके समवसरणमें बैठे हुए यथार्थ स्वरूप प्रदर्शित किया है। दान, शील, तप और भावना, इन चार प्रकारके धर्मोंके विषयमें वर्णन करते हुए आपने दान-धर्मका सबसे पहले उपदेश दिया है। दान धर्म—सब धर्मोंका शिरोमणि है। तीर्थङ्कर भगवान्ने भी दीक्षा लेनेपर पहले इसी दान-धर्मको स्वीकार किया था और साम्वत्सरिक दान दिया था। दान दश प्रकारका है। मुख्य दान पाँच प्रकारका है,—"सुपात्रदान, अभयदान, अनुकम्पादान, कीर्त्तिदान और उचित दान। इनमें भी सुपात्र-दान और अभय-दान—ये दोनों सर्वोपरि है। इन दानोंमें भी सुपात्र-दानको जैन-शास्त्रोंने सर्वोत्कृष्ट माना है। इससे मोक्ष तक प्राप्त होती है।

सुपात्रदानका आराधन करनेसे; अर्थात सुपात्र-दान देनेसे अनेक भव्यप्राणियोंको परम पदतक प्राप्त हो गया है। इस सम्बन्धमें जैनशास्त्रोंमें भरतचक्रवर्तीसे लेकर शालिभद्र श्रेष्ठीपुत्र तक असंख्य दृष्टान्त भरे पड़े हैं। सुपात्र-दानका सच्चा स्वरूप यह है—जैन-वाणीका सम्यक् प्रकारसे आराधन करने वाले, पञ्चाचारका पालन करनेवाले और पञ्चमहाव्रतको धारण करनेवाले मुनिमहाराजको त्रिकरण शुद्धि-युक्त अन्न-पानादिकका दान करना। इससे उत्तरोत्तर सर्वोत्कृष्ट सुखोंकी प्राप्ति होती है। इसमें कोई सन्देह नहीं। इस अतीव उत्तम दान धर्मके अन्तर्गत सुपात्र दानके विषयमें एक महाकविने चम्पक श्रेष्ठीका चरित्र लिखा है। उसीका यह भाषान्तर पाठकोंको भेंट किया जाता है। इससे सुपात्र-दानका महत्व भली भाँति प्रकट होता है।

आशा है हमारी अन्यान्य पुस्तकोंके अनुसार इसे भी अपनाकर हमारे उत्साह को बढ़ायेंगे।

ता० ३०-२-५४
७, खेलात घोष लेन
करणावट-निवास
कलकत्ता

आपका
काशीनाथ जैन

जीयागंज (मुर्शिदाबाद) निवासी स्वर्गीय

राय बहादूर लछमीपत सिंहजी के वंशज

श्रीयुक्त बाबू

श्रीपत सिंहजी दूगड़ का

संक्षिप्त जीवन-परिचय

शास्त्रकारोंने ठीक ही कहा है कि :—

परिवर्तिनि संसारे, मृतः को वा न जायते ।

स जातो येन जातेन, याति वंश समुन्नतिम् ॥

इस संसार-सागरमें जिसके रंग निरन्तर पलटते रहते है। जिसमें मनुष्यका जीवन पानीके बुलबुलेके समान है। पैदा होना और मर जाना नित्यका खेल-सा है। उसमें उसीका जन्म ग्रहण करना ठीक है जिसके द्वारा अपनी जाति की कुछ भलाई हो, अपने वंशका गौरव हो, अपने कुलका नाम ऊँचा हो, नहीं तो इस संसार में निरन्तर हजारों लाखों पैदा होते और मरते रहते हैं। उनकी और कौन लक्ष देता है और इस जातिके उपकार करनेवालोंका नाम मर जानेपर भी इस संसारके चित्र-पटपर विराजमान रहता है। उनके यशरूपी शरीरको न तो बुढ़ापा आता है और न मृत्यु ग्रास करती है। वे अपनी कीर्तिके द्वारा अमर हो जाते हैं। ऐसे अमर कीर्ति सत्पुरुषोंका नाम सभी लोग बड़ी श्रद्धाके साथ लिया करतेहैं।

ऐसे ही विरले सज्जनोंमें बालुचर-जीयागंज मुर्शिदाबाद निवासी सुप्रसिद्धरईस-जमिदार आपके प्रपितामह माननीय बाबू प्रतापसिंहजी दूगड़ बड़े ही प्रसिद्ध धर्मात्मा, दयालु एवं दानवीर थे। उनके दो पुत्र रत्न हुए, जिनका नाम लछमीपत सिह जी और धनपतसिंह जी था। लछमीपत सिंह जीके एक पुत्र हुए, जिनका नाम छत्रपत सिंह जी था और धनपत सिंहजीके तीन पुत्र हुए, जिनका नाम गणपतसिंहजी, नरपतसिह जी, और महाराज बहादुरसिंहजी। छत्रपतसिंहजीके दो पुत्र हैं, जिनका नाम श्रीपत सिंहजी और जगतपत सिंहजी। श्रीपत सिंहजी के संतान नहीं है। जगतपत सिंहजीके चार पुत्र हैं जिनका नाम राजपतसिहजी, कमलपत सिंहजी, प्रजापत सिंहजी, और जदुपत सिंहजी है। गणपतसिंहजीके पुत्र नहीं हुआ। नरपतसिंहजी के तीन पुत्र हुए, जिनका नाम सुरपतसिंहजी, महीपतसिहजी और भूपतसिहजी है। महाराज बहादुरसिंहजीके भी छः पुत्र हैं, जिनका नाम ताजबहादुर सिंहजी, श्रीपाल बहादुर सिंहजी, महीपाल बहादुरसिंहजी, भूपाल बहादुर सिंहजी, जगतपाल बहादुर सिंहजी और कुमारपाल सिहजी है। इन्हींमें से यहाँ पर हम माननीय बाबू छत्रपत सिंहजीके ज्येष्ठ पुत्र-रत्न श्रीपत सिंहजीका जीवन-परिचय उद्धृत करते हैं।

बाबू श्रीपत सिहजीका जन्म सं० १९३८ मे जीयागंज में हुआ था। आपके पिताजीका नाम छत्रपत सिहजी और माताजीका नाम फुलकुमारी था। आपकी शिक्षा जीयागञ्ज में हुई। आपका विवाह संस्कार १२ वर्ष की आयु मे बीकानेर निवासी गोरेलालजी कोचर की सुपुत्रीके साथ हुआ था। आपका जैसा रहन-सहन एवं

अध्यवसाय है, वैसा ही आपकी धर्मपत्नी रानी धन्नाकुमारी का भी है। अतः आपका गृहस्थ-संसार सानन्द व्यतीत होता जा रहा है। आपकी ३७ वर्षकी आयुमें आपके पिताजी का देहावसान हो गया। इसके बाद कारोबार का सारा भार आपके ऊपर आ पड़ा। जिसे आप सुचारु रुपसे संचालन करते जा रहे हैं।

आपका धर्म-प्रेम जाति-प्रेम देश-प्रेम परम प्रशंसनीय है। आपने अपने बाहुबलसे अच्छा वैभव उपार्जन किया है। इसलिये आप स्वनामधन्य पुरुष हैं। आपके अध्यवसाय, साहस धर्य आदि गुण सबके लिए आदर्श होने योग्य हैं। आपकी दानशील-ताको जितनी प्रशंसा की जाय तो भी कम है। आप यों तो सदैव शुभ दान करते रहते हैं। और अनेक अनाथ, निराधार एवं निस्सहायोंको सहायता पहुँचाते ही रहते हैं। तथापि आपके औदार्यके उज्ज्वल उदाहरण भी ऐसे हैं जो आपकी कीर्तिको चिरस्थायी बनाये रहेंगे।

आपने निम्नलिखित संस्थाओंको आर्थिक सहायता प्रदान की है और नियमित मासिक सहायता भी दिया करते हैं। आपने अपनी जमिदारीके राजमहल नासक गाँवमें अपनी विमाता जवाहिर कुमारीके स्मरणार्थ हाई-स्कूल (High School) बनवा दी है, जिसमें आपने १०,०००) दस हजार रुपये प्रदान किये हैं एवं मासिक सहायता भी दिया करते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक दातव्य औषधालयोंका भार भी आपने ग्रहण किया है। ईस्वी सन् १९१९ के दुष्कालके जमानेमें आपने अनेक दीन-दुःखी मनुष्योंको अन्न-वस्त्र एवं उनके निर्वाहके लिये बहुमूल्यमें चावल खरीदकर नाममात्र

अल्पमूल्य लेकर बँटवाये थे। भागलपुरमें अपने पूर्वजोंका निर्माण कराया हुआ "श्रीवासूपूज्य भगवान" का मंदिर है। वह जीर्ण-शीर्ण हो गया था, इसलिये उसके जीर्णोद्धारमें १२,०००) बारह हजार रु० लगाकर पुनः प्रतिष्ठा करवाई। एवं समूचे मंदिरका जीर्णोद्धार करवाया। यह जीर्णोद्धार २००१ में करवाया है। इसी वर्ष जीयागंजके श्रीसंभवनाथ भगवानके मंदिरमें तथा दादा-वाड़ीके मंदिरमें भी १५००) रु० लगाकर जीर्णोद्धार करवाया।

इसके सिवा बनारसमे अपने पूर्वजोंका बानाया हुआ श्रीपार्श्व नाथ भगवानका मंदिर है, उसके जीर्णोद्धारके चन्देमें ३०००) तीन हजार रुपये प्रदान किये। बालुचर-जीयागंजके श्रीआदीश्वर भगवानके मंदिरमें वेदी निर्माणके लिये १०००) रु० प्रदान किये। पावापुरीके जल-मन्दिरमें तालावके चारों ओर कोट बनवाने के लिये ३०००) की सहायता दी है। दिनाज पुरके मन्दिरके जीर्णोद्धारमें भी ५००) रुपये प्रदान किये है। संवत् १९४९ में जीयागंज हाई-स्कूल (High School) मे श्रीपतसिंह हॉल (Hall) के नामसे नई कक्षा (Class) खोलनेके लिये ४०००) चार हजार रुपये लगाकर भवन निर्माण करवाया है। मालदा जिलेमे आपकी जमींदारीका गांव महानन्द टोला है, उसमें हाई-स्कूल बनानेके लिये एवं छात्रोंके खेल-कूद करनेके लिये ५०००) पाँच हजार रुपये की जमीन प्रदान की है। इसके अलावा आपके रहनेका एक विशाल भवन है, उसमें हॉस्पिटल (Hospital) औषधालय बनवानेके लिये वचन दिया है।

राजगृह, पावापुरी, चम्पानगर, क्षत्रिय-कुण्ड आदि तीर्थ

एवं अनेक जैनमन्दिर, धर्मशाला तथा भोजनालयोंमें भी हजारों रुपयोंका दान प्रदान किया है। आत्मीय स्वजन भाई-बन्धुओंको भी आपने बहुतसी सहायता रुपयों से प्रदान की है। कठगोला बगीचा तथा मन्दिरके मरम्मत कार्यमे २०,०००) बीस हजार रु० लगाये हैं। इसके अतिरिक्त अपने पिताजीका निर्माण कराया हुआ श्री विमलनाथजी भगवानका विशाल मन्दिर है। उसके अगल-बगल दक्षिण और पश्चिम दिशामे जमीन पड़ी थी उसे १२,५०० साढ़े बारह हजार रुपयोंमे खरीदकर उस जगहमें नयी धर्मशाला और आयंबिल भवन बनवा दिया है। उसमे लगभग ५००००।। ५५०००) पचास पचपन हजार रुपये लगाये हैं। आयंबिल भवनमें नियमित रुपसे साधु, साध्वी, श्रावक-श्राविकाऐं निरन्तर आयंबिलका लाभ उठाते रहते है।

इस कार्यमे मुख्यतः आपकी धर्म-पत्नी रानी धन्नाकुमारी देवी अग्रगण्य रहा करती हैं। वे स्वयं बड़ी ही आदर्श तपस्विनी हैं। निरन्तर एकासन, बियासन, उपवास, आयंबिल, निवी, ओली आदिकी तपस्या करती रहती हैं। एवं सामायिक, प्रतिक्रमण, पौपध आदि क्रियाएँ भी निरन्तर करती रहती हैं। कभी-कभी तो आप चौसठ प्रहरी पौपध-व्रत ग्रहण कर साध्वीकी भाँति उग्र तपस्या करती हैं। अड़सठ वर्षकी आयु होते हुए भी इतनी उग्र तपस्या करना, यह एक बड़े ही महत्वपूर्ण गौरवका विषय है। और यही कारण है कि आयंबिल भवनमे आपकी आदर्श प्रवृत्ति देखकर अन्यान्य श्राविका वर्ग भी आपके साथ तपस्यायें

करती रहती हैं। इससे सौ-सौके लगभग छोटे-मोटे तपस्वी हो जाया करते हैं। अभी कुछ दिनों पहले आपके साथ एक चार वर्षके बालकने आयंबिल व्रत किया था। उसकी ऐसी सद्वृत्ति एवं सद्भावनाको देखकर सभी तपस्वी चकित बन गये। क्यों न हो? एक व्यक्तिकी आदर्श धर्मप्रवृत्तिको देखकर कौन मनुष्य उसका अनुकरण न करेगा। रानीजीकी यह धर्म-प्रवृत्ति अत्यन्त सराहनीय एवं अनुकरणीय है।

गत वर्ष पर्युषणके अवसर पर बाबू साहबने अक्षय-निधि-तपस्या का आयोजन करवाया, उसमें जीयागञ्ज—बालुचर के श्रावक श्राविकाओंने तपस्या का अपूर्व लाभ ग्रहण किया था। इस कार्यके लिये आपने बड़ाही सहयोग दिया है। भविष्यमें भी नियमित रूपसे अक्षय-निधि तपस्या होती रहे, ऐसी शासन देवसे प्रार्थना है।

जीयागंजमें कॉलेज स्थापित करनेके लिये

६,५०,०००) छः लाख पचास हजार का दान

सन् १९४९ मे आपने कालेज बनवाया जिसमें अपने निजी निवासस्थानका विशाल भवन था, जिसकी लागत लगभग २५००००) ढ़ाई लाख, रुपये है। उसे कालेजके लिये दिया है। एवं २५००००) लाख रुपये नगद तथा १५००००) की जमींदारी भी कॉलेजके संचालन के लिये प्रदान की है। कॉलेजका नाम "श्रीपतसिंह कॉलेज" रखा गया है।

प्रसूती गृहके लिये

पचास ५००००) हजार रु० का दान

सन् १९५० में जीयागंजके London Mission Society's Hospital में जैन महिलाओंके लिये रानी धन्नाकुमारी श्रीपतसिंह वार्डके नामसे ५०,०००) रुपये प्रदान कर एक पृथक् प्रसूती-गृह बनवा दिया है।

कलकत्तके जैन-भवनके निर्माणार्थ

१,००,०००) एक लाख रुपये का दान

आपने जैनभवनमें "लछमीपतसिंह श्रीपतसिंह दूगड़" हाल बनवानेमें एक लाख रुपये प्रदान किये हैं। इसके पूर्व जैनभवनके चन्देमें २५००) दिये थे। कलकत्तेकी श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संप्रदायमें व्याख्यान-भवन की परम आवश्यकता थी। उसकी पूर्तिके लिये इस हालको निर्माण करवा कर आपने बड़ा ही उपकार कार्य किया है जो चिरस्मरणीय बना रहेगा।

रानी धन्नाकुमारी पुस्तकालय भवन के लिए

५०,०००) पचास हाजार का दान

इधर गत २४ दिसम्बर १९५३ को" लक्ष्मीपत श्रीपतसिंह दूगड़ हाल" का उद्घाटन माननीय डा० कैलाशनाथ काटजू केन्द्रिय सरकारके गृहमन्त्रीके करकमलों द्वारा किया गया। इस अवसरपर आपने अपनी धर्म-पत्नी रानी धन्नाकुमारीके नामपर उपरोक्त हालके ऊपर एक नया

पुस्तकालय भवन निर्माणके लिए ५०,०००) पचास हजार रुपये प्रदान करनेका वचन दिया है। इसके अतिरिक्त इसी अवसरपर कलकत्तके माननीय राज्यपाल एच. सी. मुखर्जी के द्वारा दार्जिलिङ्गमें दीन, अनाथ जनता के लिए स्थापित संस्थामें २५५१) रुपये प्रदान किये हैं।

जीर्णोद्धारमें १५,०००) पन्द्रह हजारका दान

हम पहले लिख चुके है कि जीर्णोद्धार आदिमें आपने हजारोंका दान दिया है। किन्तु इस वर्ष आपने मुर्शिदाबादके जैन-मन्दिरों के जीर्णोद्धार करानेमें १०,०००) दस हजार रुपये प्रदान करनेका वचन दिया है। इसके अतिरिक्त अभी कुछ दिनों पहले आप सिद्धक्षेत्रकी यात्रा करनेके लिये पधारे थे, उस समय अजमेर, आदि अन्यान्य स्थानोंमें मन्दिरोंके जीर्णोद्धारके, लिये लगभग ५,०००) पांच हजार रुपये प्रदान किये हैं।

"आदिनाथ-हिन्दी-जैन-साहित्य-माला" को

५००१) पाँच हजार एक रुपये का दान

उपरोक्त संस्था लगभग ३० वर्षों से हिन्दी जैन साहित्यका प्रकाशन कर रही है। इसका संचालन हम (काशीनाथ जैन) करते रहते है। इसमें लगभग ५० के ऊपर छोटे मोटे ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, और इस समय नवीन प्रकाशन कार्य सुचारु रुपसे हो रहा है। इधर गत वर्ष माननीय बाबू श्रीपतसिंहजीने १५००) रुपयों की सहायता प्रदान की थी। इस के अतिरिक्त अभी हमने आपसे "माला" के संरक्षक बनने की प्रार्थना करते

हुए "माला" की सहायता के लिए ११,०००) ग्यारह हजार रुपये की मांग की थी। इस पर आपने फिलहाल ५००१) पांच हजार एक रुपया प्रदान करने की स्वीकृति दी है। हमारी भावना थी कि, "माला" की उन्नतिके लिये नया प्रेस-छापाखाना स्थापित कर उसकी आय से प्रकाशन कार्य बढ़ा दिया जाये। और सस्ता साहित्य कर जैन समाज में जोरों से प्रचार किया जाये। इस लक्ष्य को लक्षित कर आपसे ग्यारह हजार की मांग की थी; किन्तु समय की विचित्र गति के कारण हमारी आशा फलवती हुई नहीं। किन्तु हमे आशा ही नहीं बल्कि पूर्ण विश्वास है, कि भविष्य मे हमारी मांग को आप अवश्य ही पूर्ण करेंगें। इस समय आपने हमारे कार्यालय के प्रति उदार भावना रखते हुए दानवीरता का परिचय दिया है। तदर्थ हम आपके पूर्ण रूप से आभारी एवं चिरऋणी हैं। इसके उपलक्ष में हमारी प्रकाशित सभी पुस्तकों में संरक्षक के नाते आपका चित्र एवं जीवन परिचय लगा रहेगा।

ओली की तपस्या में

१०,०००) दस हजार रुपये व्यय किये

संवत् २००७ मे आपकी धर्मपत्नीने ओली की थी, उसके उपलक्षमे वीस स्थानकको पूजा एवं नव पद महाराजके मण्डलकी पूजन करवाई। इसके सिवा आत्मीय स्वजन बन्धुओंको वेष-पोषाक आदि प्रदान किया। धर्मोपकरण, चन्द्रवों, पुठिया, साधु, साध्वियोंके पात्र आदि उपकरणमें १०,०००, १२,०००) हजार रुपये व्यय किये।

अंग्रेजोंके शासन-कालमें बड़े लाट साहब आदि आपसे मेल-

जोल रखते थे एवं आपका अत्यन्त आदर सत्कार करते रहते थे। आपको दानशील जानकर अंग्रेजी शासनके लाटसाहव आदि उच्चपदस्थ कर्मचारी सार्वजनिक चन्देमें आर्थिक सहायता लिया करते थे, जिसमें आपने लगभग एकलाख रुपये प्रदान किये हैं। वर्त्तमान शासनकालके गवर्नर-मन्त्री आदि भी आपसे मेल-जोल रखते हैं। एवं आपके स्थान पर भी निमन्त्रित होकर पधारते रहते हैं। आज-कलके शासनकालमें जैन-समाजके अग्रगण्यों में आपका ही नाम मुख्य माना जाता है।

प्राय: देखा जाता है कि लोग धन और वैभव पाकर अभिमान में उन्मत्त हो जाते हैं। परन्तु आपमें अभिमान तो नाम मात्र भी नहीं है। आप वड़े ही दयालु एवं विनयी हैं। धर्म और शिक्षाके भाव आपके हृदयमें संपूर्ण रूपसे भरे रहते हैं। आज तक आपने धार्मिक कार्योंमें बड़े उत्साहसे दान दिया है। इसके अतिरिक्त शिक्षा एवं साहित्य प्रचारके लिये भी मुक्तहस्तसे दान करते हैं। आपकी इस दानशीलतासे वहुतसे दीन-दुखियोंका उपकार हुआ है। आप वड़े ही नम्र और मिलनसार प्रकृतिके हैं। इस समय आपकी उम्र ७२ वर्ष की है। अस्तु! शासनदेव आपको दीर्घजीवी करें। आपके चित्तमें सदैव धर्मकी प्रभावना उत्तरोत्तर वढ़ती रहे, यही हमारी आन्तरिक अभिलाषा है।

कलकत्ता
७, खलात घोप लेन
करणावट-निवास
३०-२-'५४

निवेदक :—

काशीनाथ जैन

चम्पक सेठ

पहला परिच्छेद

असंख्य द्वीप-समूहके मध्य भागमें बसे हुए, सब तरहकी सर्वोत्कृष्ट सम्पत्तिसे संयुक्त इस जम्बूद्वीपकी दक्षिण दिशामें भरत नामका क्षेत्र है। उसमें वैताढ्य पर्वत और गङ्गा तथा सिन्धु आदि नदियोंसे विभक्त होनेके कारण छः भाग बन गये हैं। इसी भरत क्षेत्रके मध्य खण्डमें चम्पा नामकी एक अत्यन्त सुहावनी नगरी है। उसमें हर एक प्रकारके व्यापारियोंके लिये अलग-अलग चौक-बाजार बने हैं। सौगन्धिक, गान्धिक, ताम्बूलिक, कांदविक, सुवर्णकार, माणिक्य—अन्न-व्यापारी, वस्त्र व्यापारी चर्मकार, कांस्यकार, मालाकार,

मणिकार, सूत्रकार, लौहकार, घृतापणिक, तैलक, सौचिक, कार्पासिक, भाण्डशालिक—बर्तन बेचने वाले काष्ठशालिक, रजक,—धोबी विज्ञान शालिक, तन्तुवाचक, आदि चौरासी चौरस्ते वहाँपर हैं; जो बड़े ही रमणीय हैं।

किसी जमानेमें वहाँ सामन्तपाल नामके एक न्यायगुणालङ्कृत नरपति रहते थे। उसी नगरमें वृद्धदत्त नामका एक व्यापारी भी रहता था, जिसके पास छानवे करोड़ मुहरोंकी माया थी। यह सेठ बड़ा ही कंजूस था, इसी लिये वह अपने इस धनको देवमन्दिरमें देवताकी तरह रखकर रात—दिन उसीकी पूजा किया करता था। वह प्रत्येक वर्ष अनुकूल समय देखकर गल्ले, घी और तेल आदि खरीदता और उन्हें फायदेके साथ बेच डालता था, इसी तरह व्यापार करके उसने अनेक मूल्यवान् रत्न आदि भी कमाकर जमा किये थे। परन्तु देव-पूजा गुरु-भक्ति, साधर्मी-वात्सल्य और

अतिथि-सत्कार आदि अच्छे कर्मोंको नहीं करनेके कारण वह अपने मनुष्य-जन्मको नाहक गवाँ रहा था। ऐसे ही कृपणोंके लिये शास्त्र-कारोंने कहा है, कि जिसके घर कभी न तो पाहुने आते हैं और न साधर्मि, उसके लिये जीते जी रोना आता है और मर जानेपर खुशी होती है।

एक दिन रातको वह सेठ अपने शयन—मन्दिरमें लेटा हुआ अपनी कृपणतापर विचार करता हुआ जग रहा था, इसी समय पिछले पहर न जाने किधरसे यह आवाज़ उसके कानमें पड़ी, कि इस लक्ष्मीको भोग करनेवाला तो पैदा हो चुका! यह सुनते ही वह अपने मनमें विचार करने लगा। ऐं! यह क्या? तो क्या मेरे कोई पुत्र आदि नहीं होनेके कारण मेरी यह अपार सम्पत्ति कोई और ही भोगेगा?"

यही सोच—सोचकर उसे बड़ा पछतावा होने लगा। लगातार तीन दिनोंतक उसने

यही वाणी रातके समय सुनी। तब बहुत उकता कर उसने अपनी गोत्रदेवीकी पूजा की और उनके सामने कुशकी चटाईपर उपवास करता हुआ बैठ रहा। उपवासके सातवें दिन देवीने प्रकट होकर कहा,—"सेठजी! तुमने जो अदृष्ट वाणी सुनी है, वह बिलकुल ठीक है। तुम्हारी लक्ष्मीको उपभोग करनेवाला तो पैदा हो चुका। अब मैं क्या करूँ? मेरा उसमें कोई वश नहीं; क्योंकि होनहार बड़ी प्रबल होती है।"

सेठने पूछा,—"देवी! यदि ऐसा ही है, तो कृपाकर इतना तो बतला दो, कि वह कहाँ पैदा हुआ है?"

देवीने कहा,—"काम्पिल्यपुर नगरके त्रिविक्रम नामक सेठके घरमें जो पुष्पश्री नामकी दासी है, उसीके पेटसे पैदा हुआ है।" यह कह, देवी अन्तर्धान हो गयीं।

इसके दूसरे ही दिन सेठने पारणा किया

और अपने छोटे भाई साधुदत्तके सङ्ग सलाह करने लगा।

साधुदत्तने कहा,—"हे भाई! यदि देवीने ऐसा कहा है तो ठीक ही है। होनहार प्रबल होती है, इसलिये तुम व्यर्थका सोच न करो; क्योंकि इसमें किसीका कोई वश नहीं चलनेका।"

वृद्धदत्तने कहा,—"भाई! यद्यपि होनहार हो कर ही रहती है, तथापि पुरुषको अपने पुरुषार्थसे काम लेनेमें ऊठापन नहीं करनी चाहिये। पुरुषार्थ कभी-कभी होनहारको भी उलट देता है। कहा भी है, कि,

> "उद्यमं साहसं धैर्यं, बलबुद्धि-पराक्रमाः।
> षडेते यस्य विद्यन्ते, तस्य दैवोपि शक्यते॥"

अर्थात्—उद्यम, साहस, धैर्य, बल, बुद्धि और पराक्रम—ये छः चीजें जिसमें होती हैं। उससे दैव भी डरता है।"

साधुदत्तने कहा,—"भाई! यदि इन्द्र भी

दैवको वशमें करके होनहारको उलट देनेकी चेष्टा करे, तो उन्हें भी कोरी हैरान ही हाथ आयेगी—उनका किया कुछ भी न होगा। कहते हैं, कि

"दैवमुल्लंघ्य यत्कार्यं, क्रियते फलवन्न तत्।
सरांभश्चातकेनात्तं, गलरन्ध्रेण निर्गतम्॥"

अर्थात्—"दैवका उल्लंघन करके जो कार्य किया जाता है, वह कभी फलदायक नहीं होता। यदि चातक पक्षी सरोवरका पानी पिये, तो वह उसके गलेके छेदकी राह बाहर निकल जाता है।" अब इस होनहारकी प्रबलताके विषयमें मैं तुम्हें एक कहानी सुनाता हूँ, उसे सुनो।

"रत्नस्थल नामक नगरमें रत्नसेन नामके राजा रहते थे। उनके बहत्तर कलाओंमें निपुण रत्नदत्त नामका एक पुत्र था। राजाने कुमारके योग्य कन्या ढूँढ़नेके लिये सोलह-सोलह मन्त्रियोंको चारों दिशाओंमें भेज दिया।

उनमेंसे प्रत्येकको कुमारका सुन्दर चित्र और उसकी जन्म—पत्रिका भी दे दी। उनमेंसे तीन तो कुमारके योग्य कन्या नहीं पाकर, व्यर्थ ही हैरानी—परेशानी उठानेसे ऊबकर पूर्वादि तीन दिशाओंमें घूम कर घर लौट चले। नाटक करते समय नाचका ताल भूल जानेसे नाचनेवालेको जैसा खेद होता है, वैसा ही खेद अनुभव कर, अपनी आत्माको कृतार्थ मानते हुए वे तीनों अपने नगरमें आये।

"इधर जो सोलह मन्त्री कौबेरी—उत्तर दिशाकी ओर गये थे, वे इधर-उधर घुमते—फिरते गङ्गानदीके किनारे बसे हुए चन्द्रस्थ नामक नगरमें आ पहुँचे। वहाँ चन्द्रसेन नाम के राजा रहते थे। उनकी चन्द्रावती नामकी एक कन्या थी, जो बड़ी ही अलौकिक सुन्दरी और चौंसठ कलाओंमें प्रवीण थी। मन्त्रियोंने राजा चन्द्रसेनके पास जाकर उन्हें कुमारका चित्र और उनकी जन्म—कुण्डली दिखायी।

राजाने उसी समय अपनी लड़कीको बुलवाकर देखा, कि इन दोनोंकी जोड़ी तो बहुत ही अच्छी होगी। इसी लिये उन्होंने उसी समय ज्योतिषियोंको जन्म-पत्र देखनेके लिये बुलवा भेजा। सब देख—सुनकर, अगले बारह वर्षोंतककी गणनाकर उन लोगोंने कहा;—"हे राजेन्द्र! आजके सत्रहवें दिन जैसी श्रेष्ठ लगन पड़ती है, वैसी लगन फिर अगले बारह वर्षोंतक नहीं आनेकी।"

राजाने कहा,—"वर तो बहुत दूर है और आप लोगोंने लगन इतनी पासकी विचारी,, फिर कैसे क्या किया जाये!

मन्त्रियोंने कहा,—"महाराज! आप पवन वेगा नामकी उस लाल साँडनीको भेज दें। वह बहुत जल्द कुमारको अकेले यहाँ ले आयेगी।"

राजाने झट पट यह बात मानली और .न्त्रि ोंके साथ उस पवनवेगा नामकी साँडनीको.

उसी समय रवाना किया। पाँच दिनमें वे लोग राजा रत्नसेनकी राजधानीमें पहुँचे। राजाने राजकुमारी चन्द्रावतीका चित्र देखकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और कुमारको साँडनी-पर सवार होकर उन्हें मन्त्रियोंके साथ जानेकी अनुमति दे दी।

उन दिनों लङ्का नगरीमें रावण राज्य करता था। उसके पास तीनों खण्डोंकी ऋद्धियाँ मौजूद थीं, बेशुमार फ़ौज थी और इन्द्रादि देवता सब लोकपालोंके साथ उसकी सेवा करते थे। एक दिन उसने ज्योतिषीसे पूछा,—"मेरी मृत्यु कैसे होगी?"

ज्योतिषीने कहा,—"हे दशानन! अयोध्या नगरीमें जन्म लेनेवाले राम और लक्ष्मणके हाथों तुम्हारी मृत्यु होनी बदी है। ये दोनों वहाँके राजा दशरथके पुत्र होंगे।"

यह सुन रावण बड़ी उदासमें पड़ा और अपने मन्त्रियोंके साथ बैठकर विचार करने

लगा। उनके विचारों का सारांश यही था, कि किसी उपायसे ऐसा करना, जिसमें यह बात न होने पाये। मन्त्रियों ने कहा,—"होन-हार कैसे मिट सकती है ? विधिही तोड़ता और वही जोड़ता है; फिर वही चाहे तो जोड़े हुएको तोड़ डालता है। लोग लाख छटपटाया करें, पर विधिका लिखा को मेटनहारा ?"

रावणने बड़े गर्वसे कहा,—"अजी रहने दो। उत्तम पुरुषों पर विधाताका क्या वश चल सकता है ? ये तो पुरुषार्थके माननेवाले होते हैं।"

ज्योतिषीने कहा,—"हे राजन् ! ऐसा मत बोलो। सुनो—आजके सत्रहवें दिन चन्द्र-स्थलके राजाकी पुत्री और रत्नस्थलके राजाके पुत्रका परस्पर विवाह होने वाला है। विवाह मध्यान्ह कालमें ही होगा। इस निश्चित बातको नहीं होने देनेके लिये तुम या तुम्हारा, कोई सेवक तैयार हो, तो इस बातकी हामी

हाथ परीक्षा भी हो जायगी, कि होनहार टल सकती है या नहीं।"

यह सुन, रावणने उस विवाहमें भाँजी डालनेके इरादेसे राजकुमारी चन्द्रावतीको चुरवा मँगाया और लङ्कामें लाकर एक विद्या देवीको हुक्म दिया, कि तुम एक पेटीमें खाने पीने की चीजें, ताम्बूल तथा अन्य उपयोगी वस्तुओं के साथ इस राजकुमारीको भी रख लो और अपना रूप पर्वतके समान विशाल बनाकर उस पेटीको अपने मुँहके भीतर रखे हुई गङ्गा और समुद्रका जहाँ सङ्गम हुआ है, उसी स्थानके बीचोबीच जलमें सत्रह दीनों तक छिपी बैठी रहो। उस देवीका नाम तिमिंगिली था। उसने राजाका यह हुक्म पातेही उसीके अनुसार कार्य किया। इसके बाद रावणने व्यन्तर जातिके तक्षक नामक सर्पविशेषको बुलाकर कहा,—"राजकुमारी चन्द्रावतीके साथ व्याह करनेके लिये तैयार होकरआये हुए कुमार

रत्नदत्तके पास जाकर तुम उसे काट खाओ।" तक्षकने तत्काल आज्ञाका पालन किया। उसके काटतेही कुमार बेसुध होकर गिर पड़े। मन्त्र जानने वालोंने हजार झाड़-फूक की; पर कोई कुछभी काम न आयी। तब मन्त्रवादियोंने कहा,– "शास्त्रमें लिखा है, कि विषकी मूर्छा छः महीने तक रहता है। इसके लिये तुम लोग राजकुमारको जलमें डुबाये रखो – इनकी लाश न जलाओ।"

विज्ञ पुरुषोंके मुँहसे ऐसी बात सुनकर राजाने एक बहुत बड़ा सन्दूक बनवाकर उसीमें राजकुमारकी लाश रखवा दी और उस सन्दूक को गङ्गाकी धारामें छुड़वा दिया। संयोगवश वह सन्दूक पानीमें बहता हुआ धीरे-धीरे उसी गङ्गासागर सङ्गम पर आ पहुँचा, जहाँ तिमि-गिली कुमारी चन्द्रावतीको छिपाये बैठी हुई थी। ठीकही कहा है, कि जो कभी ध्यानमें भी नहीं आती, उसेही विधि-विधान बातकी बातमें कर डालता है।

इधर होनहारके वशमें पड़कर तिमिंगिली भी सत्रहवें दिनकी बात भूल गयी और ठीक उसी दिन मुँहमें पेटी रखे-रखे उकताकर आपही-आप बोल उठी,—"अब तो यही जी चाहता है; कि जरा इस पेटीको मुँहसे बाहर निकालकर रख दूँ और गङ्गासागरमें क्रीड़ा करूँ।" यही सोच, उसने पेटी खोलकर कुमारी चन्द्रावतीसे कहा—बेटी! मैं जरा थोड़ी देर यहीं जलमें क्रीड़ा करने जाती हूँ। तब तक तू भी जरा पानीके किनारे क्रीड़ा कर ले। यह कह वह तिमिंगिली क्रीड़ा करनेके लिये दूर चली गयी।

इधर चन्द्रावती अपने कैदखानेसे निकलकर इधर-उधर घूमही रही थी, कि इतनेमें हवाके झोंकेसे बहती हुई राजकुमारवाली वह पेटी भी वहीं आ पहुँची। उस सन्दूकको देखकर चन्द्रावती को बड़ा कौतूहल हुआ और उसने झटपट उसे खोलकर देखा, तो उसमें राज-

कुमारके रूपरङ्गका एक आदमी सोया हुआ पाया। उसने तुरंतही अपनी अँगूठीसे वह अँगूठी उतार ली, जिसमें जहर उतारने वाली मणी जड़ी हुई थी और उसीको जलमें डुबोकर उसी जलसे कुमारका सिञ्चन करने लगी। तुरन्तही कुमार होशमें आकर उठ बैठे। अब तो राजकुमारीको साफ़ मालूम पड़ने लगा, कि मैंने इन्हीं राजकुमारका चित्र उस बार देखा था। यही सोचकर वह मन-ही-मन बोली,--"अवश्य यही कुमार रत्नदत्त हैं, जिनके साथ मेरे पिताने मेरा विवाह निश्चय किया था।" यह बात मनमें आतेही वह बड़ी हर्षित हुई और कुमार भी उसे पहचानकर फूले अङ्ग न समाये। अब तो दोनों एक दूसरेको अपनी रामकहानी सुनाने लगे। बातही-बातमें चन्द्रावती बोल उठी,—"आजही वह सत्रहवाँ दिन है।" अब क्या था? दोनोंने उसी समय गान्धर्व रीतिसे परस्पर एक दूसरेके साथ विवाह कर लिया।

सच है, जो बात कभी ध्यानमें भी नहीं आती, जहाँतक कविकी कल्पना भी नहीं पहुँच पाती, जिसका कोई कभी सपना भी नहीं देखता, वही बात विधाता बड़ी आसानीसे कर डालता है।

इसके बाद तिमिंगिलीके आनेका समय निकट जान, समुद्रके किनारे पड़े हुए नाना प्रकारके रत्नोंको चुनकर कुमार और कुमारी, दोनों फिर तिमिंगिलीकी उस पेटीके अन्दर घुस गये। थोड़ी देरके बाद आकर तिमिंगिलीने पेटीको बन्द देखकर पूछा,—"क्यों बेटी! क्या तू भीतर है? कन्या बोली,—"हाँ, भीतरही हूँ। इसके बाद वह देवी पहले की तरह उस पेटीको मुँहमें रखकर जलमें जा रही।

इधर रावणने सत्रहवें दिनकी दोपहरके बाद ज्योतिषी को बुलाकर कहा,—"देखो, तुम्हारी बात झूठी हो गयी; मैंने उन दोनों

वर-कन्याओं का विवाह, जिसे तुम निश्चय बतलाते थे, नहीं होने दिया।"

यह कह, सब सभासदों को अपनी बातका प्रमाण देनेके लिये उसने तिमिंगिली को बुलवाया और सबके सामने उसके मुखमें छिपाकर रखी हुई पेटीको खुलवायी। ज्योंही पेटी खोली गयी, त्योंही उसके भीतरसे दिव्य रूपवान् स्वामीके साथ कुमारी चन्द्रावती निकल आयी। दोनोंके हाथमें व्याहके नये कङ्गन बँधे थे। यह देखकर रावणके अचम्भेका कोई ठिकाना नहीं रहा। इस विचित्र घटनाका हाल पूछने पर वर-कन्याने अपना सब सीधा सच्चा हाल कह सुनाया। उनकी बात सुनकर रावणको इस बातका पूरा भरोसा हो गया, कि कोई होनहारको नहीं टाल सकता। यही सोचकर उसने ज्योतिषीको खूब इनाम देकर विदा किया। रावणने कुमार और उसकी स्त्रीको विद्याधरोंके द्वारा उसके पिताके पास भिजवा

दिया। उनके माता-पिता और हित-कुटम्बी आदि उन्हें पाकर बड़े ही प्रसन्न हुए।

इस प्रकार कथा सुनानेके बाद साधुदत्त चुप हो गया। तब उद्योग वादी वृद्धदत्त सेठने कहा,—“भावी बड़ी प्रबल होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं; पर आखीरकार उद्यम भी तो कोई चीज़ है? देखो. नीतिमें कहा हुआ है, कि उद्योगी पुरुषसिंहों को ही लक्ष्मी प्राप्त होती है—दैव—दैव चिल्लाना तो कोरे आलसी मनुष्यों का काम है। मनुष्यको चाहिये, कि दैवकी कुछ भी परवा न कर आत्मशक्तिका पूरा उद्योग करता हुआ उद्योग करे, क्यों कि यदि यत्न करनेपर भी कार्य्य सिद्ध न हो, तो फिर अपना कोई दोष नहीं रह जाता। भाई साधुदत्त, देखो, मन लगाकर सुनो। मैं तुम्हें उद्योगका भी एक दृष्टान्त सुनाये देता हूँ।—

“मथुरा-नगरीमें हरिबल नामके एक राजा

रहते थे। उनके मन्त्रीका नाम सुबुद्धि था, जो बुद्धिके सचमुच समुद्र ही थे। कुछ दिन बाद राजा और मन्त्री, दोनोंके घर एक ही समय पुत्र उत्पन्न हुए। राजकुमारका नाम हरिदत्त और मन्त्री पुत्रका नाम मतिसागर रखा गया। छठीकी रातको व्यन्तरीकेसे आकार-प्रकारवाली किसी स्त्रीको अपने घरसे निकल कर जाते देख, मन्त्रीने किसी तरह उसका हाथ पकड़ लिया और उसे जानेसे रोक कर पूछा,—"क्यों देवी! तुम कौन हो?"

वह बोली,—"मन्त्री! मैं तो विधि नामकी प्रसिद्ध व्यन्तरी देवी हूँ। मैं दोनों कुमारों के ललाटमें भाग्य—रेखा लिखने आयी थी और वही लिखकर लौटी जा रही हूँ।"

मन्त्रीने पूछा,—"ज़रा यह तो बतलाओ, कि तुमने क्या लिखा है।"

उसने कहा,—"यह राजकुमार तो बहुत बड़ा शिकारी होगा और प्रतिदिन मृग आदि

जीवोंका शिकार किया करेगा। मैंने राजकुमारके ललाटमें तो यही लिख दिया है और मन्त्रीपुत्रके भाग्यमें लिखा है, कि वह लकड़हारा होगा और रोज़ लकड़ीका बोझा ले आया करेगा।"

यह सुन मन्त्रीने कहा,—"हे विधाता! तुमने इन दोनों लड़कोंके भाग्यमें ऐसी वंश—विरुद्ध बात क्यों लिख दी।"

वह बोली,—"इन दोनोंकी भवितव्यता ही ऐसी थी, फिर इसमें कोई उलट-फेर कैसे कर सकता था।"

मन्त्रीने कहा,—"देवी! यदि ऐसी ही बात है, तो देखो मैं तुमसे कहे देता हूँ, कि मैं अपने बुद्धि बलसे तुम्हारे इस कर्म-लेखको झूठा साबित कर दूँगा। अब तुम भी अभीसे अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेका प्रयत्न करो, जिसमें उन दोनोंके भाग्यमें तुमने जो कुछ लिखा है, वही हो। यदि ऐसा न हुआ तो तुम्हारी बड़ी हँसी होगी।"

मन्त्रीके इन ताने-भरे वचनों को सुनकर वह देवी यह कहती हुई अदृश्य हो गयी, कि अरे तू आदमी होकर इस तरह बढ़-बढ़कर क्यों बातें करता है? तेरा किया क्या हो सकता है? मन्त्री भी उसकी बातों पर विचार करता और अपने इष्ट देवताका स्मरण करता हुआ सो रहा। इसी तरह कितने ही दिन बीत गये।

कुछ दिन बाद उस नगरीपर सरहदपरका कोई राजा अपनी सेना लेकर चढ़ आया। हरिबल राजाने अपनी सेनाके साथ उसका सामना किया और तरह-तरहके युद्ध किये, परन्तु अन्तमें वे हारे और मारे गये। वैरियों ने नगर अपने अधिकारमें कर लिया। इसी समय मौक़ा पाकर हरिदत्त और मतिसागर-अर्थात् राजा और मन्त्रीके पुत्र—दोनों ही नगर छोड़ कर निकल भागे। सारी दुनियाकी खाक छानते और भीख माँगते हुए वे लोग लक्ष्मीपुर नामक नगरमें आये। संयोगवश राजकुमार

एक व्याधा के (बहेलियेके) घर जा पहुंचे और उसीके नौकर हो रहे। कुछ दिनतक चिड़ीमारका पेशा करनेके बाद राजकुमारने अपनी एक अलग कुटिया बना ली।

मन्त्री-पुत्र भी जंगलसे लकड़ियाँ चुनकर लाने और उन्हें ही बेचकर अपना पेट पालने लगा। सच है, कर्मका लिखा नहीं मिटता।

> आरोहितुं गिरिशिखरं, समुल्लंघ्य यातु पातालं।
> विधिलिखिताक्षरमालं, फलति कपालं न भूपालः ॥

अर्थ—चाहे पर्वतके शिखर पर चढ़ जाओ, चाहे उसे लाँघकर पातालमें चले जाओ, विधाता ने तुम्हारे ललाटमें जो कुछ लिख दिया है, वही फलेगा ; महज़ राजा-महाराजा होनेसे ही क्या होता है ?

इधर सुबुद्धि नामक मन्त्रीने अपने मालिक को मरते और नगरको शत्रुओंके हाथमें चले जाते देख, उस नगरको छोड़कर दूसरे-दूसरे नगरोंमें घूमना शुरू किया। क्रमसे इधर उधर-

की सैर करता हुआ वह भी उसी नगरमें आ पहुँचा, जिसमें रहकर उसका बेटा लकड़हारेका काम करता था। उसने एक बार अपने लड़के के सिरपर लकड़ियोंका बोझा देखकर कहा,—"क्या बेटा! यह तेरा क्या हाल है?"

उसने कहा,—"पिताजी! मैं तो प्रतिदिन प्रातःकाल वनमें चला जाता हूँ और वहाँ एक घड़ी, एक पहर या सारा दिन मिहनत करता हूँ, तोभी एक ही बोझा लकड़ीका मिलता है, अधिक नहीं। उसीसे मैं किसी-किसी तरह अपना पेट पाल लिया करता हूँ"।

मन्त्रीने अपनी बुद्धि लड़ाकर विधि-विहित कार्यको उलट देनेकी इच्छासे कहा,—"पुत्र! जिस वनमें चन्दनकी लकड़ियाँ मिलें, उसी वनमें जाया करो और चन्दनके सिवा और किसी पेड़की लकड़ी न काटा करो। यदि किसी दिन चन्दनकी लकड़ी न मिले, तो उस दिन योंही भले ही रह जाना।

पुत्रने पिताकी यह बात सहर्ष स्वीकार कर ली। इसी तरह एक दिन मन्त्रीको राजकुमार से मुलाकात हुई। उनका सारा हाल पूछनेके बाद मन्त्रीने कहा,—“हे पुत्र! यदि तुम्हें शिकार करते समय कोई अच्छासा सफेद हाथी दिखायी दे तो तुम उसे ही बाँध लेना और किसी मृग आदि पशुको कभी न पकड़ना।”

राजकुमारने भी मन्त्रीकी यह बात सहर्ष मान ली। दोनों लड़कोंने मन्त्रीके कहे अनुसार ही कार्य किया। वे दिन भर भूखों रह गये; पर न मन्त्री-पुत्रने चन्दनके सिवा और कोई लकड़ी ली, न राजकुमारने हाथीके सिवा और जानवर को पकड़ा। इसी तरह साँझ हो गयी। यह देखकर विधि नामक देवीने सोचा, कि अब तो मेरी बात मिथ्या हुआ चाहती है, इसलिये उसने अपनी दैवी शक्ति द्वारा मन्त्री-पुत्रको चन्दनकी लकड़ियोंका बोझा दे दिया और राजकुमारके जालमें एक

मतवाले हाथीको लाकर फँसा दिया। दोनोंने नगरमें जाकर अपनी-अपनी चीज़ें बेंचीं और बहुतसा धन पैदा किया। इसी प्रकार वे प्रति-दिन करने लगे। धीरे-धीरे वे दोनों बड़े धन-वान् हो गये। मन्त्री पुत्रने चन्दन बेंच-बेंच कर करोड़ों मोहरें इकट्ठी कर लीं और राज-कुमारने थोड़े ही दिनोंमें हजारों हाथी जमा कर लिये।

इस तरह मन्त्रीकी बुद्धि काम कर गयी। मन्त्री-पुत्र अपना धन और राजकुमार अपना राजसैन्य लिये हुए अपने नगरमें आये और शत्रु राजाको हटा कर हरिदत्त राजा को गद्दी पर बैठाया। अनुक्रमसे मन्त्री पुत्र और राज-पुत्र दोनों ही परम सुखी हो गये।

इतनी कथा सुनकर वृद्धदत्तने कहा,—"हे भाई! देखो, सुबुद्धि मन्त्रीने अपनी बुद्धिके जोरसे विधाताका लेख भी मिटा ही दिया। इसीसे मैं कहता हूँ, कि उद्योगी पुरुष सिंहोंको

ही लक्ष्मी मिलती है। जसे सुबुद्धि मन्त्रीको अपने उद्योगका फल मिला, वैसेही मुझे भी मिलेगा।

यह कह गधे, ऊँट, बैल, हाथी और गाड़ी आदि साथ लिये हुए वृद्धदत्त कांपिल्यपुर नामक नगरमें आया और अपने मालकी बिक्रीका इन्तजाम अपने विश्वासी आदमियों के हाथमें देकर आप सेठ त्रिविक्रमके घर चला गया। वहाँ उसने ऐसी चेष्टा की, जिसमें उसके शरीरपरके हीरे-मोतीके गहने आदि सेठ त्रिविक्रमकी निगाह तले जरूर ही पड़ें। उसे देखते ही त्रिविक्रमने बड़ी खातिरसे उसे बैठाया और कहा,—"आपकी जबतक इच्छा हो, तब तक हमारे घर रहें। इसे अपना ही घर समझें।"

उसकी यह विनय-भरी बात सुन, वृद्धदत्त उसके घर रह गया और वहीं खाने-पीने और सोने लगा। इस प्रकार वहाँ रहते हुए उसने

वस्त्राभरण आदिका दान कर-करके त्रिविक्रम की स्त्री, पुत्र, पुत्री, दास—दासी और खास करके पुष्पश्री नामकी उसकी गर्भवती दासीको भली भाँति प्रसन्न कर लिया। इसी तरह परस्पर दान—सन्मानके साथ रहते हुए उसने चार महीने बिता दिये। दोनों सेठोंमें खूब गहरी दोस्ती हो गयी।

इधर देशमें खरीद—बिक्रीका समय आया देख, एक दिन वृद्धदत्तने सेठ त्रिविक्रमसे अपने देशको लौट जानेकी आज्ञा मांगी?"

यह सुन, सेठ त्रिविक्रमने कहा,—"जैसी इच्छा हो, वैसा कीजिये; क्योंकि नतो मैं जाने को कह सकता हूँ, न रहनेके लिये हठ कर सकता हूँ। हाँ, इतनी विनय अवश्य है, कि फिर दर्शन देंगे और जबतक यहाँसे अलग रहेंगे, तब तक हमें याद करते रहेंगे। आप जहाँ जा रहे हैं, वहभी घरही है और यह भी घरही है, इसलिये आपको मैं क्यों रोकूँ? हाँ,

मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ, कि हमारे यहाँसे रथों, ऊँटों और गायोंमेंसे जो-जो आपको पसन्द हो अथवा रत्न जड़े गहनेमेंसे जोभी गहने आपको पसन्द हो अथवा और जो कोई वस्तु आपको प्रिय लगती हो, उसे आप हमारी प्रसन्नता और यादगारके लिये जरूर अपने साथ ले जाइये।"

वृद्धदत्तने कहा,—"अजी, आपका जो कुछ है, वह मेरा ही है, इसमें कहनाही क्या है? मेरी चीजें भी आपकी ही हैं। यह भी निश्चयही मानेंगे। तोभी जब आप इस प्रकार आग्रह कर रहे हैं, तब मैं आपसे यही निवेदन करना चाहता हूँ, कि आप अपनी पुष्पश्री नामक परम चतुर दासीको मेरे साथ जाने दीजिये। वह रास्तेमें हमारे लिये रसोई बना लिया करेगी। इसमें वह बड़ी निपुण है। घर पहुँचकर मैं उसे तुरतही यहाँ भेज दूँगा।"

बेचारे सेठ त्रिविक्रम नाहीं नहीं कर सका

और बोला,—"भाई! मैं इसे तुम्हारे साथ भेज तो देता हूँ; पर देखना, इसे तुरतही लौटा देना; क्योंकि यह मुझे छोड़कर नहीं रह सकती।" यह कह, उसने दासीको वृद्धदत्तके साथ लगा दिया।

वृद्धदत्त उस दासीको रथपर बैठाकर ले चला। एक दिन जब वे लोग उज्जयिनी नगरी के पास पहुँचे, तब नियत खोटी होनेके कारण वह अपने सब साथियोंको आगे भेजकर आप पीछे रह गया। जब सब लोग बहुत दूर चले गये, तब एक निर्जन स्थानमें ले जाकर उस पापी सेठने दासीको रथसे नीचे गिरा दिया, और उसका गला घोंटकर उसे मार डाला। इसके बाद कानूनके पञ्जे से बचनेके लिये वह डरा हुआ आगे बढ़ा। इतनेमें उसे खोजता हुआ उसका एक साथी वहाँ आ पहुँचा और सेठको देखकर पूछा,—"आप पीछे क्यों रह गये?" उसने कहा,—'मेरे साथ जो दासी



उस पापी सेठने दासोको रथसे नीचे गिरा दिया, और उसका गला घोंटकर उसे मार डाला।

(पृष्ठ ४२)

थी, वह शौचके लिये नीचे उतरकर कुछ दूर चली गयी थी। जब उसके लौट आनेमें बड़ी देर हुई, तब मैंने उसे चारों तरफ खोजा; पर वह कहीं नहीं मीली।" इसी प्रकार उस दुष्टने सबको झूठी बात बतलायी और यही बात सेठ त्रिविक्रमके पास भी लिख भेजी।

मेरा वैरी मर गया—यही सोचकर हर्षित हुआ वृद्धदत्त अपनी नगरीमें आया। कुछ दिन बाद उसकी कौतुकदेवी नामक स्त्रीके तिलोत्तमा नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई। धीरे-धीरे वह लड़की चौंसठ कलाओंमें कुशल हो गयी।

इधर उज्जयिनीके पास जिस रास्तेमें वृद्ध-दत्तने पुष्पश्री नामकी दासीको मार डाला था, वहाँपर उसके गर्भसे तुरत निकला हुआ बच्चा हाथ पैर मार-मारकर छटपटा रहा था। इसी समय उज्जयिनीमें रहनेवाली एक बुढ़िया किसी कार्यवश उधरहीसे जा रही थी। उसकी दृष्टि

उस मरी हुई दासी और उसके तुरत पैदा हुए बच्चे पर पड़ी। उस बुढ़ियाके साथ तीन और चतुर स्त्रियाँ थीं। वे भी उसी जगह आ पहुँची। बालक को जीता देखकर बुढ़िया बोली,—"ओह! न मालूम किस चाण्डालने यह कुकर्म कर डाला है। यह काम किसी चोर-डाकूका तो है नहीं; क्योंकि स्त्रीकी देहपरके कीमती गहने ज्यों-के त्यों पड़े हैं, शास्त्रोंमें अनाथ चैत्य और अनाथ बालकका उद्धार करनेवाले को बड़ा पुण्य होता है, ऐसा लिखा है। इसलिये मैं तो इस बालकको ले जाकर पुत्रकी तरह इसका पालन-पोषण करूँगी।" यह कह, उस दासीकी देहपरसे सब गहने उतार उसने पोटली बाँध ली और उस बालकको लिये हुई अपने घर चली आयी।

घर आकर वह सबके पहले राजाके पास पहुँची और उनसे सब हाल ज्यों-का-त्यों कह सुनाया। राजाने कहा,—"बुढ़िया! तू इस

लड़केको मेरा पुत्र मानकर पोस ले और इसका हाल समय-समयपर मेरे पास आकर सुना जायाकर।" यह कह, राजाने उस दासीकी लाशको जलवा दिया और उस बालकका बड़ी धूमधामसे "चम्पक" नाम धराया। उसकी सब तरहकी देख-रेख राजा स्वयं करने लगे।

समय आनेपर राजाने बड़ी धूमधामसे उस लड़केका अक्षरारम्भ करवाया और उसे पाठशालामें पढ़नेके लिये भेजा। अपूर्व पुण्योंके प्रभावसे वह बालक थोड़े ही दिनोंमें सब विद्याओंमें निपुण हो गया। एक दिन जब पाठशालाके बालकोंकी आपसमें बहसें हुईं, तब चम्पकने अपने तर्कों और युक्तियोंसे सबको हरा दिया। इससे बहुतसे लड़के उससे नाराज हो गये और झगड़ा करने लगे। बातों-ही-बातोंमें लड़कोंने उससे कहा,—"अरे, तू बिना माँ-बापका बच्चा क्यों व्यर्थ घमण्ड करता है?"

यह सुनकर उस बालकका जी बहुत छोटा

हो गया। वह उसी समय अपने घर आया और उस बुढ़ियासे पूछने लगा,—"माता ! मेरे पिताका नाम क्या है ?'

यह सुन, बुढ़ियाने उसे जिस तरह पाया था, उसका सारा हाल ज्यों-का-त्यों कह सुनाया। सुनकर बेचारा मन मारे रह गया।

दूसरा परिच्छेद।

प्राणान्तक नहीं—परिणय ?

धीरे-धीरे चम्पक जवान हो गया। राजाके हुक्मसे उसने व्यापार करना भी शुरू किया और थोड़ेही दिनोंमें चौदह करोड़ मोहरें पैदा कीं। उसके गुणोंपर सभी बड़े-बड़े व्यापारी रीझ गये और उसके मित्र बन गये। एक वार किसी मित्र व्यापारीके पुत्रका विवाह चम्पा नगरीके पास किसी गाँवमें होनेवाला था। इसीलिये उस व्यापारीने बड़े आग्रहसे उसे बुल-

वाया। उधर कन्यापक्ष वालों ने भी दोस्तीका दावा करते हुए अपने मित्र वृद्धदत्तको बुलवा भेजा था, इसलिये वह भी वहाँ पहुँचा हुआ था। विवाह बड़ी निर्विघ्नताके साथ हो गया। इसके बाद भी कन्याके पिताने बरातको कुछ दिनों के लिये ठहरा रखा। साथही वृद्धदत्त वगैरह जो लोग उसके यहाँ आये थे, वे भी ठहरे रह गये।

एक दिन नगरके बाहर एक बावलीके पास बहुतसे व्यापारी दाँतौन करनेके लिये बैठे हुए थे। उसी समय वृद्धदत्तने चम्पकको देखा और सोचने लगा,—"यह देवकुमारसा सुन्दर युवा कौन है?" इसके बाद दोनों की मुलाक़ात हुई और परस्पर सङ्गीत और काव्य की चर्चा छिड़ गयी। वृद्धदत्त उसकी चतुराई, सुन्दरता और सौभाग्यको देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ और विचार करने लगा, कि यदि यह सुन्दर युवा मेरी कन्या का स्वामी हो तो

बड़ा अच्छा हो, इस लिये जरा इससे इसके कुल, वंश, नाम और निवास आदिका हाल पूछकर मालूम कर लेना चाहिये। यही सोच-कर उसने चम्पकसे उसके कुल वंश आदिकी बात पूछी। सुनकर उसने वह सब बातें ज्यों-की-त्यों कह सुनायीं, जो उसने उस बुढ़ियासे सुनी थीं। चम्पकके जन्मवृतान्तकी बात सुन-कर वृद्धदत्तने सोचा,—"अरे, यह तो वही आदमी मालूम पड़ता है, जिसे देवीने मेरी लक्ष्मीका भोगनेवाला बतलाया था। मैंने जल्दबाजीके मारे उस दासीको तो मार डाला; पर उसके गर्भको नष्ट नहीं कर दिया। उसीका यह परिणाम हुआ, कि यह जीता जागता निकल आया और आज इतना बड़ा हो गया है। खैर, अब भी क्या बिगड़ा है? इसे उज्जयिनी पहुँचने के पहलेही मार डालना चाहिये। यदि यह विशाल नगरीमें पहुँच जायगा, तो फिर बहुतेरे मित्रोंसे घिरे होनेके

कारण जल्दी चङ्गुलमें नहीं फँसेगा। इस-लिये जो कुछ करना हो, अभी झटपट कर लेना चाहिये। रही हत्याकी बात, सो अब उसका क्या डर है? मैं तो पहले ही इसकी माँको मार चुका हूँ, जैसे सत्तर वैसे अस्सी! इसलिये चाहे जैसे हो वैसे, मैं तो इसे मारे बिना न रहूँगा।"

मन-ही मन यही सोचकर उसने चम्पकसे कहा,—"भाई तुम! मेरे पास चलकर रहो, तो थोड़ेही दिनोंमें तुम्हें करोड़ों मुहरों का फायदा हो जायगा। इसके बाद तुम अपने घर चले जाना। बहुतसा किराना माल हमारे नगरमें सस्ते भावमें मिलता है और यहाँ वे महँगे भावोंमें बिकते हैं। इस लिये तुम एक-बार मेरे नगरमें ज़रूर चलो। मैं तुम्हें पत्र लिखकर देता हूँ, उसे तुम वहाँ मेरे भाईको दिखलाना। वह तुम्हें बहुतसा माल खरीदवा देगा। वह सब यहाँ लाकर बेचोगे, तो करो-

ड़ोंका फायदा उठा लोगे। इस मामलेमें तुम मेरी बातका पूरा-पूरा विश्वास करो। मैंने दूसरे किसीको यह बात इसलिये नहीं बतलायी, कि वे सब धोखाधड़ी करेंगे और मैं स्वयं इसलिये नहीं जाता, कि मैं जिनके घर मिहमान होकर आया हूँ वे मेरे इतनी जल्दी चले जानेसे बड़े नाराज होंगे।"

सेठ वृद्धदत्तकी बातें सुन, करोड़ों रुपयेके लाभकी आशासे चम्पकका हृदय हर्षित हो गया। उसने चम्पा नगरी जाना स्वीकार कर लिया। इसके बाद दोनों जनोंने बरातियोंके साथ कन्याके पिताके घर भोजन किया। दूसरे दिन चम्पक चम्पानगरी जानेको तैयार हो गया। वृद्धदत्तने अपने छोटे भाई साधुदत्तके नाम एक पत्र लिखकर उसे दे दिया, जिसमें उसने लिखा कि,—

"इस दुरात्माने बहुतसे बड़े-बड़े लोगोंके सामने मेरा घोर अपमान किया है और झूठी-

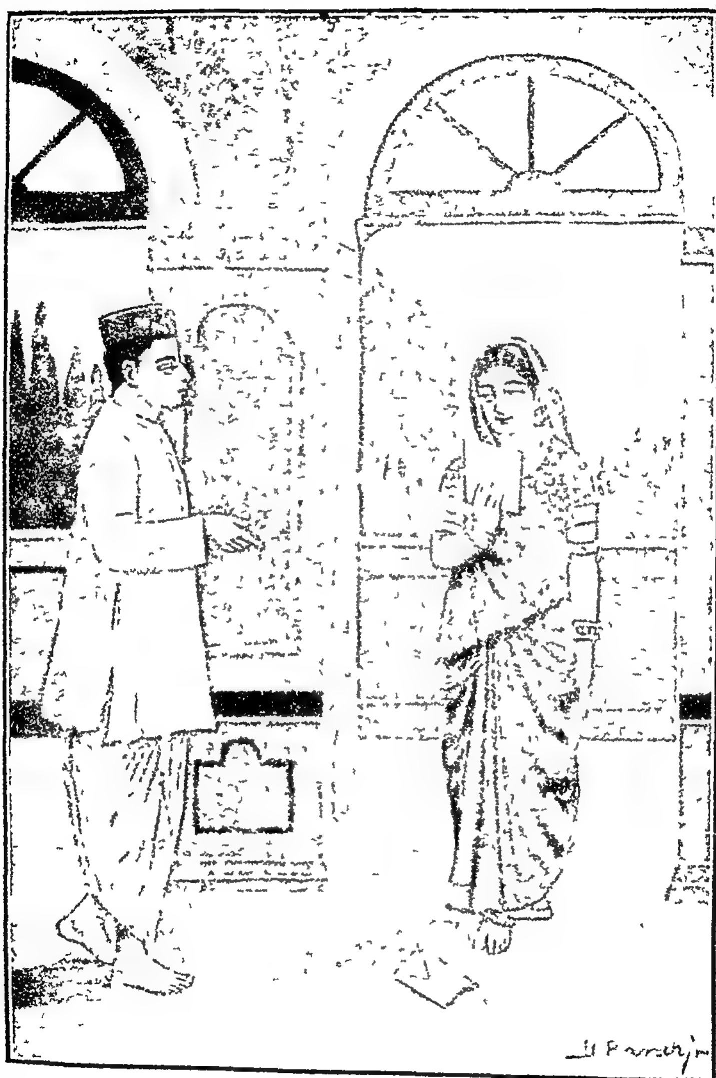
झूठी बातें कहकर मेरा मान घटाया है—मेरी हद्द दर्जेकी बेइज्जती की है। इससे मेरे हृदय को बड़ी चोट पहुँची है। मैंने किसी-किसी तरह इसे पत्र लेकर तुम्हारे पास जानेको राजी किया है। इसलिये तुम इस पत्रको देखतेही पत्र लेजानेवालेको अपने घरके पिछवाड़ेवाले आँगनमें लेजाकर गुप्त रूपसे मार डालना और इसकी लाश कुएँ में फेंक देना।

सवेरेही इसकी खबर विश्वास-योग निशानी के साथ किसी आदमीके द्वारा मेरे पास भिजवाना या खुदही चले आना।

इसी तरहका पत्र लिख, उसे बन्द कर वृद्धदत्तने चम्पक को दिया। वह भी पत्र लेकर लाखों करोड़ोंके लाभका सपना देखता हुआ चम्पानगरीकी ओर चल पड़ा। वहाँ पहुँच, वृद्धदत्तके घरका पता लगाकर वह वहाँ पहुँचा और घोड़ेसे उतरतेही आवाज लगायी; पर कोई न बोला; क्योंकि वृद्धदत्तकी स्त्री किसी

नातेदारके घर गयी हुई थी और साधुदत्त बिक्री की हुई चीजोंके दाम वसूल करने गया हुआ था। जब कहीं कोई न दिखाई दिया, तब चम्पक चुपचाप घरके अन्दर चला गया। वहाँ उसने अकेली तिलोत्तमाको गेंद खेलते देखा। उसने अपने साथ लाया हुआ पत्र उसीको दे दिया। तिलोत्तमाने पत्र लानेवाले का रूप-सौन्दर्य देखतेही मुग्ध होकर कहा,—"तुम अपना घोड़ा घुड़सालमें बाँध आओ और तुम बाहरके बैठकखानेमें बैठ जाओ।"

चम्पकने उसकी ये विनयभरी बातें मान लीं। होनहार की बात, तिलोत्तमाने उस पत्रको खोलकर पढ़ा। पूरा पढ़ कर वह सोचने लगी,—"अरे! पिताजीने किसलिये इस तरह की हत्यारीका काम करनेका किया? ऐसे देव-कुमार सुन्दर युवक और सौभाग्यवान् पुरुषको किसलिये मार डालना चाहा है? यह सुन्दर युवा तो यदि मेरा स्वामी हो तो अच्छा है।"



उसने अपने साथ लाया हुआ पत्र उसीको दे दिया। तिलोत्तमाने पत्र लानेवालाका रूप-सौन्दर्य देखतेही मुग्ध होकर कहा,—

(पृष्ठ ५२)

यही सोचकर उसने अपने पिताके हस्ताक्षरकी हू-ब-हू नक़ल करते हुए एक नया पत्र तैयार कर लिया, जिसमें उसने यह मज़मून लिखा,—

"इस चम्पक नामक युवाके साथ तुम आजही मेरी कन्या तिलोत्तमाका व्याह कर देना।"

ऐसा लिख, पहला पत्र नष्ट कर, उसे पहले पत्रकी तरह लिफ़ाफेके अन्दर बन्द कर वह उस जगह पहुँची, जहाँ उसकी माता गयी हुई थी। वहाँ पहुँचकर उसने अपनी माताके हाथ में पत्र दे दिया।

सच है, जैसी होनहार होती है, वैसी ही बुद्धि उपजती है, वैसी ही मति हो जाती है और वैसे ही मददगार भी मिल जाते हैं।

शामको साधुदत्त व्यालू करनेके लिये घर आया। उसे आते देख, चम्पकने उठकर उसे प्रणाम किया। पूछने पर अपना पूरा हाल

बतलाते हुए उसने कहा,—"मैं सेठ वृद्धदत्तका पत्र लेकर आया हूँ ।"

यह सुन, साधुदत्त उसे बड़े आदरसे घरके अन्दर ले गया। तिलोत्तमाकी माता भी घर आ गयी थी। उसने बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने स्वामीका पत्र साधुदत्तके हाथमें दिया।

भोजनके समय सब लोग एक साथ बैठे, तब साधुदत्तने ऊँचे स्वरसे उस पत्रको पढ़ा। पत्रका हाल सुन और चम्पकका रूप तथा सौन्दर्य देखकर सब लोग बड़े ही हर्षित हुए। सब लोगोंने चम्पकके साथ ही बैठ कर भोजन किया।

समय बहुत कम होनेपर भी साधुदत्तने उसी रातको बड़ी धूमधामसे विवाहकी तैयारी शुरू की। कौतुक देवीने भी भाई-बिरादरीकी स्त्रियोंको जमा किया। बहुतेरे लोग जमा हो गये। बड़ी हलचल होने लगी। उसी रातको दोनोंका ब्याह करा दिया गया।

सवेरा होते ही चारों ओरसे लोग और लुगाइयाँ बधाइयाँ लेकर आने लगीं। सारा दिन बड़ी धूमधामसे बाजेगाजे बजते रहे।

इधर वृद्धदत्त उस दिन सन्ध्यातक चम्पकके मारे जानेका समाचार लेकर किसीके आनेकी बाट बड़ी उत्सुकताके साथ जोह रहा था। वह मन-ही-मन सोच रहा था, कि अब तो मेरा काम बन ही गया होगा। इसी समय चम्पा-नगरीसे आये हुए किसी आदमीने उसे तिलो-त्तमाके ब्याहकी बात कह सुनायी। इस अन-होनी बातको सुनते ही उसके सिरपर वज्र घहरा पड़ा और उसका जी ऐसा बेचैन हुआ, कि वह तुरन्त घबराया हुआ अपने नगरमें चला आया। घरके पास पहुँचते ही उसने देखा, कि यहाँ तो जीमनवारकी तैयारी है। हज़ारों भाई—बिरा-दरीके लोग जमा हैं। यह देख, उसके कलेजेपर काला नागसा लोट गया। इसी समय साधु-दत्तने अपने भाईके आनेका समाचार सुन,

उसके पास आ, प्रणाम कर, कहा,—"भाई साहब ! मैंने आपकी आज्ञानुसार सब काम कर डाले हैं।"

वृद्धदत्तको इस बातसे दुःख तो बड़ा हुआ; पर उसने मौक़ा देखकर चुप्पी साध ली और मीठे शब्दों द्वारा साधुदत्तकी मामूली तौरसे प्रशंसा कर दी।

ब्याह—शादीकी कुल रस्में पूरी हो जानेपर एक दिन वृद्धदत्तने अपने भाईको अपने पास बुलाकर पूछा,—"भाई ! तुमने बिना समझे बुझे मेरी कन्याका विवाह इसके साथ क्यों कर दिया ?" यह सुन साधुदत्तने कहा,—"मैंने तो आपके पत्रमें लिखे अनुसार ही कार्य किया था।" यह कह उसने वृद्धदत्तकी जाली चिट्ठी उसको दिखला दी। उसे पढ़ कर वह बार-बार हाथ मलने और पछताने लगा।

विशाला (उज्जयिनी) से विवाहके अवसर पर गये हुए हित-मित्र जब फिर वहाँ लौट

आये, तब उन्हीं लोगोंके मुँहसे चम्पककी पालक-माताने उसके विवाहकी बात सुनी। अपने प्राणोंसे भी बढ़कर प्यारे पुत्रके विवाहकी बात सुन, वह बहुत आनन्दित हुई और यह समाचार सुनानेवालोंको बार-बार आसीसें दीं।

इधर भाग्यके उदय होनेसे चम्पकश्रेष्ठीका सौभाग्य दिन दिन बढ़ता चला गया। सारी चम्पानगरीके लोग उसे जीसे प्यार करने लगे।

तीसरा परिच्छेद।

गुप्त मन्त्रणा।

एक दिन रातके समय तिलोत्तमा अपने मकानकी तीसरी मंजिलसे उतरकर नीचे चली आ रही थी। इसी समय दूसरे मंजिलमें पहुँचते ही उसने किसीके बातें करनेकी आवाज सुनी। जरा गौर करके सुननेपर उसने उस

आवाजको पहचानकर कहा,—"अरे! यह तो मेरे पिताजीकी बोली मालूम पड़ती है!" इसके बाद उसने कान लगाकर सब बातें सुन लीं। उसके पिता कह रहे थे,—"प्यारी! मेरी लिखी हुई चिट्ठीका मजमून बदल गया, इसके लिये मैं सिवा विधाताके और किसका दोष दूँ? विधि-विधाताने ही मुझे धोखा दिया। यद्यपि यह अब मेरा दामाद हो गया है, तथापि नीच दासीका पुत्र होनेके कारण मैं इसे फूटी आँखों भी देखना नहीं चाहता। काल पाकर यही मेरा वारिस भी बन जायेगा, यह बात तो मुझे और भी खटक रही है। इसलिये तुम उसे खाने, पीने या अन्य किसी चीजके साथ जहर दे दो—बेटीका मुँह मत देखो। पुत्रियाँ तो बहुत हुआ करती हैं और कौन इस एक पुत्रीके बिना वंश डूबा जाता है?"

वृद्धदत्तकी यह बात तिलोत्तमाकी माताने स्वीकार कर ली। तिलोत्तमाने यह दोनों ही

बातें अच्छी तरह सुन लीं। सुनते ही वह उलटे पाँवों लौट गयी और अपने घरमें जाकर विचार करने लगी,—"यदि मैं यह बात अपने स्वामीसे कहती हूँ, तो इस बातका भय है, कि कहीं ये मेरे माता-पिताको मार न डालें और नहीं कहती हूँ, तो इन्हींके प्राणोंपर आ बनती है। यह तो साँप-छछुँदरवाली गति हुई। अब मैं क्या करूँ?"

यही सोचते-सोचते उसे एक बात सूझ गयी। तदनुसार उसने अपने स्वामीसे कहा,—"स्वामी! मैंने ज्योतिषीसे पूछ कर मालूम कर लिया है, कि आपपर दो महीनेतक बड़ी भारी आपत्ति आनेकी सम्भावना है। इसलिये आप तीन महीने तक न तो इस घरका नाज खायें और न यहाँका पानी पीयें। यहाँके दाई—नौकर पान वगैरह लाकर दें, तो उसे भी न खायें। सदा किसी दूसरे मित्रके घर जाकर खा लिया करें।"

इस बातपर चम्पकको बड़ा विश्वास हो गया। उसने अपनी स्त्रीकी कही हुई सब बातें स्वीकार कर लीं और उसी तरह रहने लगा। वह सवेरा होते ही घरसे बाहर निकल जाता और साँझतक लौटकर आता। सारा दिन नगरमें यार—दोस्तोंके बीचमें घूमता रहता। वह किसीका विश्वास नहीं करता था और जो कोई कुछ कहता, उसका उलटा ही करता था। उसे बात-बात पर सन्देह होता, कि अमुक मनुष्य अमुक बात किस गहरे मत-लबसे कह रहा है। इस तरह चम्पकश्रेष्ठी सन्देहमय जीवन व्यतीत करने लगा।

एक दिन वृद्धदत्तने अपनी स्त्रीसे पूछा,—“प्यारी! यह कैसी बात है, कि अबतक मरा नहीं? क्या तुमने मेरे कहे मुताबिक काम नहीं किया?”

यह सुनते ही सेठानी तो सन्न हो गयी। बोली,—“स्वामी मैं क्या करूँ? मैं तो रोज

ही उसकी घातमें रहती हूँ। पर वह सारा दिन ला पता रहता है। बाहर ही खाता-पीता है और यहाँके किसी आदमीके हाथका न तो पानी पीता है न पान ही खाता है। रातको चुप-चाप आकर ऊपरकी मंजिलमें सो रहता है।"

यह सुन, चम्पकको मार डालनेका कोई और उपाय करना पड़ेगा, यही सोचकर उसने अपने भण्डारके रक्षक सिपाहियोंको बुलाकर कहा,—"देखो, तुम लोग छलसे, बलसे कौशल से, चाहे जैसे हो सके, मेरे जामाताको मार डालो। इसके लिये तुममेंसे प्रत्येकको सौ-सौ मोहरें इनाम दूँगा।"

उन्होंने भी लोभमें पड़कर सेठकी यह बात स्वीकार कर ली। छः महीने बीत गये, इन्हें भी कोई मौका हाथ न लगा, कि अपना इरादा पूरा करें।

चौथा परिच्छेद ।

ललाट-लिपि

एकदिन रातके समय कहीं नाटक हो रहा था। होनहारके वशीभूत चम्पकभी वहाँ बड़ी राततक नाटक देखता रहा। उसके सब साथी और रक्षक विधि-वशात् उसे छोड़कर अपने-अपने घर चले गये। आधीरातके समय चम्पक अकेला अपने घर आया। उसने घरके अन्दर घुसतेही देखा, कि ड्योढ़ीमें पत्थरके ऊपर पाहुनोंके सोने योग्य बहुत सी शय्याएँ बिछी रखी हैं। यह देखकर उसने सोचा, इतनी रातको दरवाजा खोलनेके लिये हल्ला गुल्ला ठीक नहीं है, इसलिये यहीं सो रहूँ, तो ठीक है। यही सोचकर वह एक सेजपर सो गया। थोड़ीही देरमें उसे गहरी नींद आ गयी। इसी समय खजानेके सिपाहियोंने उसे वहाँ

सोया देख, उसे मारनेके लिये तलवार उठाया। पर एकाएक उनके दिलमें यह खयाल आया, —"स्वामीकी आज्ञा दिये हुए कई महीने वीत गये। इस बीच न तो उन्होंनेही कुछ कहा, न हमींने पूछा। इस लिये मुमकिन है, कि इतने दिनोंमें उनका खयाल बदल गया हो। अतएव एकबार उनके पास जाकर पूछ आना चाहिये। यह तो यहाँ सोयाही है, उठकर कहीं भागता थोड़े ही है? सहसा कोई काम कर बैठना ठीक नहीं"

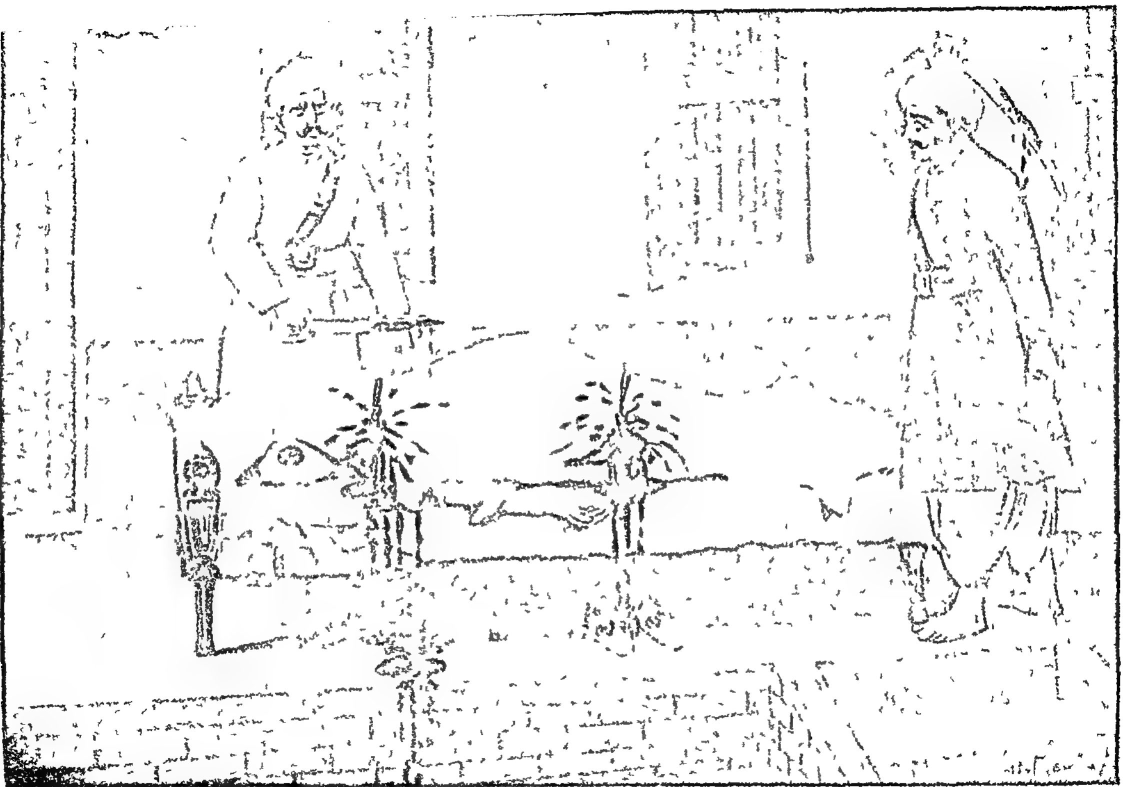
यही सोचकर वे सब सेठके पास पूछने आये। उनकी बात सुनतेही सेठने कहा,—मैं तो एक नहीं, सौ बार तुमसे कह चुका, कि उसे मार डालो। इस लिये जल्दी जाओ और उसे मार कर काम तमाम कर दो। देर मत करो।"

इधर खटमलोंने चम्पकको इतना तङ्ग किया, कि उसकी नींद एकाएक टूट गयी

और वह वहाँसे उठकर सीधा अपने मित्रके घर जाकर उसीके यहाँ सो रहा।

सिपाहियोंने लौटकर जब शय्या सूनी देखी, तब हाथमें आये हुए शिकार को उड़ा हुआ देखकर मन-ही-मन पेचोंताव खाते हुए चारों ओर उसे खोजने लगे। इसी समय वृद्धदत्त भी अपनी आँखों चम्पककी हत्या देखनेके इरादेसे वहाँ आया ; परन्तु उसने भी सेज खाली ही पायी। यह देख, उसने सोचा,—"यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है, कि न तो यहाँ चम्पक ही नजर आता है, न मेरे सिपाही दिखलाई देते हैं। न मालूम चम्पक निकल भागा या मेरे सिपाही उसे मारकर कहीं बाहर फेंकने चले गये हैं।"

यही सोचता हुआ वह पासहीकी एक शय्यापर सिर ढक कर सो रहा। इसी समय चम्पकको खोजते निराश होकर वे सिपाही फिर वहीं लौट आये ; आतेही सिर ढक कर



सोये हुए वृद्धदत्तको ही चम्पक समझ कर उन सबने एकही साथ उसपर तलवारका वार
किया। [illegible]

सोये हुए वृद्धदत्तकोही चम्पक समझकर उन सबने एकही साथ उसपर तलवारका वार किया। बेचारे बूढ़ेका दम तुरतही निकल गया। वह चिल्ला भी न सका। इसके बाद उन सबने उसकी लाश उठाकर बाहरके एक कुएँमें डाल दी, उन्होंने सोचा,—"अबतो हमारा काम बन गया। अब हमें सेठसे सौ-सौ मुहरें अवश्य मिलेगी।

सुबह होतेही वे सब सेठके पास इनाम माँगने आये। रास्तेमें उन्होंने देखा, कि रातको जो लाश उन्होंने कुएँमें डाली थी वह फूलकर पानी पर तैर रही है। अच्छी तरह नजर गड़ा-कर देखने पर उन्होंने पहचाना, कि यह तो सेठकीही लाश है। यह देख, उन्हें बड़ा अफ़सोस हुआ और वे हाहाकार करते हुए रोने लगे। अब तो वे लोग सबसे अपने पापकी बात कहने और अपनी आत्माको धिक्कार देने लगे। लोगोंने सारा हाल सुनकर वृद्धदत्तकी भी बड़ी

निन्दा की और उसके मरने पर जरा भी शोक नहीं प्रकट करते हुए कहा,—"खाद खने जो औरको, वाको कूप तैयार।"

अपने बड़े भाईके मरनेका हाल सुनकर साधुदत्त भी छाती पीट-पीटकर रोता हुआ उसी दिन मर गया। इसके बाद चम्पक श्रेष्ठी वृद्धदत्तकी ६६ करोड़ मुहरोंका मालिक हो गया और उसकी सारी सम्पत्ति इसीके हाथमें आ गयी। कुलदेवीकी बात सच हो गई। अब तो चम्पकने विशालासे अपनी माताके तुल्य उस बुढ़ियाको बुलवा लिया और अपने पूर्वोपार्जित चौदह करोड़ सुवर्ण द्रव्यको भी मँगवा लिया। धीरे-धीरे उसका नाम सब व्यापारियों में प्रसिद्ध हो गया और उसका रोजगार खूब चमक चला।

इस तरह पूर्व पुण्यों के प्रभावसे चम्पकको अपार सम्पत्ति मिल गयी। धीरे-धीरे उसका वैभव और भी बढ़ गया। ६६ करोड़ मोहरें

तो खजानेमें जमा कर दी गयीं, ६६ करोड़ व्यापारमें लगायी गयी और ६६ करोड़ सूद-ब्याज पर लगा दी गयीं। इसके सिवा उसके पास एक हजार गाड़ियाँ, एक हजार छकड़े, सात-सात खण्डों वाले एक हजार घर, एक हजार बाजार, एक हजार पाठशाला, ५०० हाथी, ५०० अच्छी नसलके घोड़े नित्य पास रहने वाले ५०० अंग रक्षक, ५०००० शूर-वीर, एक हजार ऊँट, एक लाख बैल, दस लाख गाएँ और दस हजार नौकर-चाकर हो गये।

वह प्रतिदिन एक लाख मुहरें भोग-विलासमें खर्च करता और दश लाख मुहरें दीन-दुखियों और अनाथों को दान करता था। इसके बाद वह एक जैन-मुनिके सत्सङ्गके कारण श्रावक-धर्ममें दीक्षित हो गया। वह दिनके तीनों समय जिन-पूजन करने लगा। इसके बाद उसने एक हजार जिन-मन्दिर बनवाये और पत्थर, सोना, चाँदी, स्फटिक तथा प्रवाल

आदिकी लाखों जिन प्रतिमाएँ बनवायीं। इस प्रकार अनेक देव-दुर्लभ भोग भोगते और श्रावक-धर्मका यथार्थ पालन करते हुए बहुत समय व्यतीत हो गया।

इसी तरह समय बीतता रहा। एक दिन वहाँ केवली गुरुका समवसरण हुआ। यह समाचार सुनतेही उसने समाचार लानेवालेको खूब भरपूर इनाम दिया और अपने कुटुम्ब-परिवारके साथ बड़ी धन-दौलत लिये हुए गुरु महाराजके पास वन्दन करनेके लिये आया। पाँचों अभिगमकी संरक्षण कर, केवली भगवान्की तीन बार प्रदक्षिणा कर, सन्मुख आकर वन्दना की और उचित स्थानपर आ बैठा। इतनेमें लोकालोक प्रकाशक, तीनों भुवनके लोगोंकी हृदयकी बात जानने वाले, संसार-समुद्रसे पार उतारनेमें समर्थ, शुद्ध मार्गको प्रदर्शित करनेवाले गुरु महाराजने भव्य जीवोंके उपकारके निमित्त देशना देनी आरम्भ की :—

"हे भव्य प्राणियों! इस संसार-समुद्रमें अनेक प्रकारकी दुःख-रूपी तरङ्गे उठती हैं। इन तरङ्गोंमें डूबते उतराते हुए लोगोंको केवल धर्मही बचा सकता है। कहा है,

जथ य विसय विराउ, कसायचाउ गुणेसु अणुराउ।
किरिआ सु अप्पमन, सो धम्मो सिवसुहोवाउ॥

अर्थात्—"जहाँ विषयसे विराम होता है, कषायका त्याग होता है, गुणोंमें अनुराग होता होता है, वहीं मङ्गल और सुखका साधन-रूप धर्म रहता है। और भी कहा है, कि—

मज्जविवियकसाया निद्दासिकहाय पञ्चमो भणीआ।
राए [पंचपमाया जीवं पांडति संसारे॥"

अर्थात्—"मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा-ये पाँच प्रमाद जीवको संसार-चक्रमें डालते हैं।

"इसलिये हे भव्य जीवो! तुम इस संसारकी मोह-माया में न पड़ो। जैन—धर्मका तत्व जानकर उसका आचरण करो। मनुष्य-जन्म, आर्य-क्षेत्र, सिद्धान्त-श्रवण और श्रद्धा-

ये चार चीजें बड़ी मुश्किलसे मिलती हैं। हे प्राणियों! यदि तुम सुख चाहते हो, तो फिर प्रमादका आचरण क्यों करते हो? प्रमाद से तो नरकादि दुर्गतिकी प्राप्ति होती है, जिसमें पड़कर मनुष्यको बड़े-बड़े दुःख उठाने पड़ते हैं। इसलिये तुम प्रमादको छोड़ कर धर्मकी आराधना करो। इस चञ्चल काया द्वारा स्थिर धर्मका साधन किया जा सकता है, इसलिये यह मलयुक्त और क्षणभंगुर देह पाकर इसे सार्थक बनाना चाहिये। जैसे दरिद्र को चिन्तामणि-रत्न मिलना आसान नहीं है, वैसे ही समकित आदि गुणोंकी सम्पत्तिसे संयुक्त धर्म-रूपी चिन्तामणि-रत्न पाना भी बड़ा ही कठिन है। ऐसे अमूल्य रत्नका पानेका सुयोग हाथमें रहते हुए भी तुम प्रमादमें समय नष्ट न करो।

"जिसकी मृत्युके साथ मित्रता हो, जिसमें मृत्युसे दूर भाग जानेकी शक्ति हो अथवा जो यह जानता हो, कि मैं तो मरूँगाही नहीं, वह

अलबत्ता यह सोचे, कि मैं आये दिन धर्मका साधन कर लूँगा ; परन्तु जिसको मृत्युके साथ मित्रता नहीं, जो मृत्युसे दूर नहीं भाग सकता हो और जो यह जानता है, कि मैं एक दिन जरूरही मरूँगा, वह प्राणी भला क्योंकर कहता है, कि मैं कुछ दिन बाद धर्म कर लूँगा। इसलिये भव्य प्राणियों ! जो धर्म-कार्य तुमसे आज करते बन पड़े, उसे कलके लिये न रख छोड़ो। क्योंकि यह आयु बड़ी ही चञ्चल है। इसका कोई भरोसा नहीं है। जैसे सेर हरिनोंके झुण्डमें से अपने शिकारको पकड़ ले जाता है, वैसेही काल मनुष्यको भाई-बन्धुओंके बीचसे उठा ले जाता है। उस समय उसके माँ-बाप, भाई-बन्धु, जोरू-बच्चे, कोई उसके सहायक नहीं होते। सबके देखते-देखते प्राणी अकेलाही चला जाता है। इस संसारमें जीवोंका जीवन पानीके बुलबुलेके समान है। जैसे वह पैदा होते ही मर जाता है, वैसे ही

जीव भी जिस दिन पैदा होता है, उसी दिनसे मृत्यु उसके पीछे लग जाती है। सम्पत्ति भी पानीकी लहरकी तरह चञ्चल है और पुत्र-पौत्रादिका प्रेम भी स्वप्नके समान है। इसलिये जो कुछ धर्मकार्य करते बने, कर लेना चाहिये। यही इस संसारमें सार है।

"हे भव्य प्राणियों! धर्म करते हुए जो स्वाभाविक कष्ट शरीर को सहन करने पड़ते हैं, वह तो तुमसे सहे नहीं जाते; पर जरा यह भी तो सोचो कि यह जीव पूर्वमें नरकके भयङ्कर दुःख भोग आया है। यही नहीं उससे भी अनन्त गुण अधिक दुःख जीवको नीगोदमें भोगना पड़ता है। इस बातका विचार कर, पुनः वैसे दुःख न सहने पड़े, इस विचारसे तुम स्वतन्त्रताके साथ धर्मका साधन करो और ऐसा करते हुए जो कुछ कष्ट उठाने पड़ें, उन्हें सह लो। यदि स्वतन्त्रताके साथ व्रत, तपस्या आदिके कष्ट नहीं सहन करोगे, तो फिर दूसरे

जन्ममें तिर्यञ्च, नरकादिकी गति प्राप्त कर पर-तन्त्रताके साथ अनन्त दुःख भोग करोगे।

"इस संसारमें जन्मका दुःख बुढ़ापेका दुःख, रोगका दुःख, वियोगका दुःख, शोकका दुःख और मरणका दुःख आदि अनेक प्रकारके दुःख भरे हुए हैं। ऐसा होते हुए भी तुम क्यों उसमें आसक्त होते हो! जबतक इन्द्रियाँ शिथिल नहीं हुई हैं और पूरी तरह काम दे रही हैं, तबतक वृद्धावस्था-रूपिणी राक्षसी प्रकट नहीं हुई है, जब तक रोग-रूपी विकार नहीं प्रकट हुआ है और जबतक मृत्यु नहीं आयी है, तबतक धर्मकी आराधना कर लो। जब इन्द्रियाँ निकम्मी हो जायेगी, बुढ़ापा आ जायगा, रोग घेर लेंगे, मृत्यु सरपर आ पहुँचेगी, तब क्या तुम खाक धर्मकी आराधना करोगे? जो वर्त्तमान समयको काममें नहीं लाता, समयानुसार कार्य नहीं करता, उसे पीछे पछताना पड़ता है। जैसे घरमें चारो ओर

आग लग जानेपर कोई कूँआ नहीं खोद सकता, वैसे ही हे भव्य जीवो ! जब काल खोपड़ीपर आ पहुँचता है, तब कोई धर्मकी आराधना कैसे कर सकता है ? इसलिये—

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब्ब।
पलमें परलय होयगो, बहुरि करोगे कब्ब॥

इसलिये हे भव्य जीवो ! तुम निरन्तर अपने कुटुम्बवालों को 'मेरा-मेरा' कहा करते हो ; परन्तु तुम्हारा वह कुटुम्ब कहाँसे आया और कहाँ जायेगा; तुम कहाँसे आये हो और कहाँ जाओगे, कुछ इसकी भी तुम्हें खबर है ? ये तुम्हारे कोई नहीं है, न ये साथ आये हैं, न साथ जायेंगे, तो फिर तुम कौन हो और तुम्हारे ये कुटुम्बी कौन हैं। न तुम उनके कोई हो और न वे तुम्हारे कोई है। कोई किसीका नहीं है। कोरी अज्ञानताके मारे तुम मेरा तेरा करते रहते हो। इस अज्ञानता को दूर कर, उलटे मार्गपर चलना छोड़कर

धर्मका सीधा मार्ग पकड़ो, जिसपर चलकर तुम शिवपुरको पहुँच सको। इसीसे तुम्हारी आत्माकी सार्थकता होगी और तुम्हें मनोवाञ्छित सुख मिलेगा।"

इस प्रकार केवली भगवान्‌की दी हुई देशना श्रवणकर अनेक भव्य प्राणियोंको प्रतिबोध प्राप्त हुआ। कितनेही जीवों ने पञ्च-महाव्रत ग्रहण किये, कितनों ने समकित मूल बारह व्रत अङ्गीकार किये, कितनेही समकित-धारी हो गये और कितनेही जीव भद्रिकभावी हो गये। इसके अनन्तर कुछ पूछनेकी इच्छासे चम्पक श्रेठी उठ खड़ा हुआ और केवली भगवान्‌को पञ्चाङ्ग-प्रणामकर, बड़ी विनयके साथ पूछने लगा,—"हे भगवान्! मैंने पूर्व भवमें कौनसा ऐसा सुकृत किया था, जिसके फलसे मुझे इतनी सम्पत्ति प्राप्त हुई और वृद्धदत्तने कौनसा ऐसा पाप किया था, जिससे उसकी एक करोड़की सम्पत्ति भी हाथसे गयी और

भाई सहित मृत्युको भी प्राप्त हुए। किस कर्मके कारण मैं ऐसा अज्ञातकुलवाला हुआ और इस वृद्धाके साथ पूर्व जन्ममें मेरा कौनसा सम्बन्ध था, जिसके कारण उसने इस प्रकार निस्वार्थ भावसे मेरा पालन-पोषण किया। इस वृद्धदत्तके साथ मेरा पूर्व जन्मका कोनसा वैर क्या था, जिसके कारण उसने दो-दो बार मेरे प्राण लेने का उद्योग किया। हे लोकालोकको प्रकाशित करनेवाले! आप कृपाकर मेरे इन सन्देहोंको दूर करें।

केवली भगवान्‌ने कहा—"हे चम्पक! यह सब बातें तुम्हारे पूर्वजन्मके सम्बन्धसे हुई हैं। सुनो, मैं तुम्हारे पूर्व-भवकी बातें बतलाता हूँ।"



पाँचवाँ परिच्छेद

चम्पकके पूर्व भवकी कथा।

सुमेलकापुरीके पासवाले तपोवनमें किसी समय कन्द-मूल खाकर रहनेवाले; भव-भूति नामके दो तपस्वी रहते थे, जो दुष्कर तप करते हुए, पञ्चाग्नि-स्नान और धूम्रपान आदि किया करते थे। उन में भवदत्त तो मनका बड़ा ही मैला था और भवभूति बड़ाही सीधा सच्चा था। दोनों मरनेके बाद यक्ष हुए वहाँसे हटनेपर भवदत्तका जीव तो अन्यायपुर नामक नगरका रहनेवाला वञ्चनामति नामक सेठ हुआ और भवभूतिका जीव पाटली-पुर नामक नगरमें महासेन नामका क्षत्रिय हुआ, जिसके पास अपार सम्पत्ति थी, जिसकी प्रकृति सरल और नम्र थी और जिसका स्वभाव बड़ा ही विश्वासी था। एक समयकी बात है, कि महासेन बहुतसी अच्छी-अच्छी चीजें साथ लेकर तीर्थ-यात्रा करने चला। जाते-

जाते वह क्रमशः अन्यायपुरमें पहुँचा। वहाँसे और भी आगे जानेका विचार होनेके कारण उसने एक कपड़ेमें पाँच रत्न बाँधकर सेठ वञ्चनामतिके यहाँ अमानतके तौरपर रख दिये। इसके बाद वह आगे बढ़ा।

इधर वञ्चनामतिने उस कपड़ेकी गाँठको खोलकर देखा, तो उसमें लाख-लाख रुपयेके पाँच रत्न नज़र आये। देखते ही उसके मुँहसे लार टपक पड़ी। उसने पाँचों रत्नोंमेंसे एक किसी व्यापारीके हाथ बेंचकर लाख रुपये इकट्ठे कर लिये और अपने रहनेके लिये एक बहुत बड़ा महल तैयार कराया। इसमें पूरे एक लाख रुपये ख़र्च हुए। बाक़ीके चार रत्नोंको उसने एक गुप्त स्थानमें छिपाकर रख दिया।

कुछ दिन बाद तीर्थ-यात्रासे लौटकर महासेन वहाँ आ पहुँचा और अपनी धरोहर लेनेके लिये सेठ वञ्चनामतिके घर आया। ज्यों ही उसने सेठके पास आकर प्रणाम किया। त्यों ही

उसने ऐसा मुँह बनाया, मानों उसको उसने कभी देखा ही नहीं हो और पूछा,—"तुम हो कौन और यहाँ कहाँ से आ रहे हो ? मैं तो तुम्हें पहचानता भी नहीं। तुम कहीं किसी दूसरेके धोखेमें तो मेरे पास नहीं चले आये ? मैं कभी किसीकी अमानत या धरोहर नहीं रखता। फिर तुमसे बिना जान-पहचानके आदमीकी चीज कैसे रखूँगा ? जाओ, दूसरा घर देखो, यहाँ तुम्हारी कोई चीज अमानतमें नहीं पड़ी है।"

वणिकोंके लिये कहा हुआ है, कि—

अपलपति गुह्यदत्तं, प्रत्ययदत्ते च संशयं कुरुते।
क्रय विक्रये च लुण्टति, तथापि लोके वणिक् साधुः॥

अर्थात्—वणिक चुपचाप दी हुई चीज़को साफ़ डकार जाता है, प्रत्यक्ष दी हुई चीजमें भी सन्देह किया करता है, खरीद-बिक्रीके समय पूरी लूट मचाता है; तो भी लोग उसे साधु (साहूकार) बतलाते है।'

राज्यके भिन्न-भिन्न लोगोंका यह वर्ण
सुनकर महासेनने अपने जीमें सोचा,—ज
यह हाल है, तब तो मुझे उन रत्नों से हा
ही धो रखना चाहिये। ऐसे अन्धेरपुरमें न्या
यकी कहाँ आशा है? जब न्याय ही नहीं
है, तब मेरी चीज़ कहाँ मिलनेकी है? जब
सारे नगरमें अन्याय और अन्धेर हो रहा है, तब
इस नक्कार खानेमें मुझ तूतीकी आवाज़ कौन
सुनता है।"

इसी तरह बड़ी देरतक सोच-विचार करने
के बाद उसने मन-ही-मन यही निश्चय किया,
कि यहाँ तो फ़र्याद करनी ही बेकार है; क्योंकि
कुछ सुनवाई होनेकी आशा नहीं है, उलटे जान
जानेका भी भय है, इसलिये दरबारमें न जाकर
कोई और तरकीब लड़ानी चाहिये।

यही सोचकर उसने वहाँसे क़दम बढ़ाय
और कपटकोशा नामकी वेश्याके पास आ
पहुँचा। वहाँ पहुँचकर उसने अपने रत्नोंकी

कथा उससे कह सुनायी। सुनकर उस वेश्या को बड़ी दया उपजी और उसने कहा,—"अच्छा, तुम सोच न करो। मैं तुम्हारा माल बरामद करा दूँगी।"

यह कह, वह अपने तमाम रत्न—जड़े गहनों और कीमती जवाहिरोंको सन्दूकोंमें भरकर अच्छे-अच्छे कपड़े, इत्र, फुलेल कस्तुरी मोती और मूगाँ आदिकी अलग-अलग पोटलियाँ बाँधे चतुर दासियोंको साथ लिये हुई सेठ वञ्चनामतिके घर पहुँची और बोली, "सेठजी मेरी बहन जो वसन्तपुर नामक नगरमें रहती है वहुत बीमार है उसके बचनेकी कोई आशा नहीं है, इसलिये मैं उसके पास जाना चाहती हूँ। अतएव आप मेरा यह सब कीमती माल असबाव अपने यहाँ अमानतके तौरपर रख लें। यदि मेरी बहन मर गयी तो आप यह सब बेंच-बाँचकर मेरे नामपर धर्म-कार्योंमें खर्च कर दीजियेगा।" यह सुन सेठने झटपट उसकी

बात स्वीकार कर ली; क्योंकि उस लालचीने देखा, कि यहाँ तो बड़ी गहरी रक़म हाथ आया चाहती है ।

इसी समय पहलेसे बतलाये हुए इशारेके मोताबिक महासेन वहाँ आ पहुँचा और सेठसे अपने रत्न वापिस मगाँने लगा । अब तो उस वेश्याके सामने अपनी साहूकारी बतलानेके लिये उस बेईमान सेठने कहा,—"अजी ! ले न लो, तुम्हारे रत्न क्या कहीं खोये हैं ?" यह कह उसने जो चार रत्न रखे थे, वे लाकर दे दिये। यह देख, महासेनने कहा, कि मैंने तो पाँच रत्न उस गाँठमें बाँध रखे थे। यह सुन उसने अपने पुत्रको बुलाकर कहा,—मैंने इनका पाँचवाँ रत्न धनावह सेठको दिया था, उनके यहाँसे माँग लाओ। उसका पुत्र एकदम ही वह रत्न दाम देकर ले आया ।

[illegible] पहलेसे [illegible] हुआ एक आदमी [illegible] ई

देता हुआ बोला,—"लो, बीबी ? अब तो मुँह मीठा करो। तुम्हारी बहन एकदम अच्छी हो गयीं—उनका सारा रोग जाता रहा। शरीर एकदम नीरोग हो गया। इसलिये अब तुम्हारे जानेकी कोई जरूरत नहीं है। मैं खुद उन्हें भली-चङ्गी देखे आ रहा हूँ।"

यह समाचार सुनतेही कपटकोशाने बहनके यहाँ जानेका विचार त्याग दिया और अपनी सब चीज़ें अपने घर वापिस भिजवा दीं। इसके बाद वह खुश होकर नाचने लगी। उसे नाचते देख महासेन भी नाचने लगा और सेठ वञ्चनामति भी नाच उठा। यह अचम्भा देख, कीसीने उस गणिकासे पूछा,—तुम क्यों नाच रही हो ?"

उसने कहा,—"मेरी बहन मर रही थी। वह जी उठी, इसी खुशीसे नाचती हूँ।"

फिर उसने महासेनसे कहा,—"भाई। क्यों नाच रहे हो ?

महासेनने कहा,—"मेरे डूबे हुए रत्न मुझे मिल गये, इसी लिये खुश होकर नाच रहा हूँ।"

फिर वञ्चनामतिसे भी उसने यही सवाल किया। उसने कहा—"मैंने आजतक सारी दुनियाको ठगा, पर किसीने मुझे नहीं ठगा था। आज इस वेश्याने मुझे खूब धोखा दिया। और पूरा उल्लू बनाया, इसी लिये मैं भी नाच रहा हूँ।"

इसके बाद महासेन जब उस वेश्याके साथ-साथ चला गया, तब सेठने सोचा,—"महासेनके मैंने जो रत्न दबा रखे थे, वे भी गये, जो रत्न गीरवी रख कर घर बनाया था; वह भी गया और हाथमें आते-आते उस वेश्याके कुल रत्नादि भी चले गये! मेरा तो सर्व नाशही हो गया! साथ-ही-साथ दुनियाँमें पूरी हँसी भी हुई, कि [illegible] वेश्याने मुझे चूना लगा दिया। इस लिये मैं कहाँ कौन [illegible] लेकर रहूँ?"

[illegible] दुःखित हो, लोगों